श्रीजम्बूस्वामीचरित्र।

82

पं० दीपचंद्रजी वर्णी।

१४५/२ १० A

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीजम्बूस्वामी चरित्र ।

अनुवादक—

पं० दीपचन्दजी वर्णी, नरसिंहपुर नि०

प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापड़िया,

दि० जैन पुस्तकालय, चंदावाड़ी-सूरत.

द्वितीयावृत्ति] वीर सं. २४५३ [प्रति १०००

जैन विजय प्रि० प्रेस-सूरत में मूलचंद किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया ।

मूल्य—चार आने ।

वक्तव्य।

यह हस्तप्राप्त पुस्तक किसी संस्कृत ग्रन्थके आधारपर श्री जिनदास कविने हिन्दी भाषामें अनुवादित की थी जिसे कटनी-मुड़वारानिवासी मुन्शी नाथूरामजी लमेचूने सन् १९०१ में प्रकाशित किया था, लेकिन वह अनुवाद एक तो छन्दोबद्ध था, दूसरे साधारण व्यक्ति उससे सुगमतया लाभभी नहीं उठा सक्ते थे। अतः आवश्यकता थी कि इसका एक ऐसा सरल अनुवाद प्रकाशित हो जिसे सर्वसाधारण अच्छी तरह पढ लिख लें। इस आवश्यकताको ध्यानमें रखकर उक्त अनुवादके आधारपर पं० दीपचन्द्रजी वर्णी नरसिंहपुर नि० ने यह अनुवाद किया है। हम आपके बहुत आभारी हैं कि जिन्होंनें यह अनुवाद हमें बिना किसी स्वार्थके कर दिया है।

पुस्तककी कथा रोचक है और जैनशास्त्रोंके अनुसार है। कोई भी विषय जैनशास्त्रसे प्रतिकूल नहीं होने पाया है। जो नीति वक्तवक्त काम आसकती है वह कवितामें दी गई है ताकि पाठक उसे कंठस्थ करके सदाचारी और व्यवहारकुशल बन सकें।

यह अनुवाद प्रथमवार "दिगम्बर जैन" के उपहारमें हमारी स्वर्गवासिनी भगिनी नानीबाईनके स्मरणार्थ बांटा गया था। हर्ष है कि समाजने इसे ऐसा अपनाया कि हमें इसका दूसरा संस्करण वीर सं. २४४२ में निकालना पड़ा था और वह भी खतम हो जानेसे यह तीसरी आवृत्ति प्रकट की जाती है।

वीर सं. २४५३
ज्येष्ठ सुदी ७

मूलचंद किसनदास कापड़िया।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

श्रीजंबूस्वामी-चरित्र।

प्रथम प्रणमि परमेष्ठि गण, प्रणमौं शारद माय।
गुरु निर्ग्रन्थ नमों सदा, भव भवमें सुखदाय॥
धर्म दया हिरदे धरूं, सब विधि मंगलकार।
जंबूस्वामी-चरितकी, करूं वचनिका सार॥

अथ वचनिका प्रारंभ।

मध्यलोकके असंख्यात द्वीप और समुद्रोंके मध्य एक लाख योजनके व्यासवाला थालीके आकार सदृश गोल जंबू नामका द्वीप है। जिसके मध्यमें नाभिके सदृश शोभा देनेवाला एक सुदर्शन नामका पर्वत पृथ्वीसे ९९००० योजन ऊंचा है और जिसकी जड़ पृथ्वीमें १०००१ योजनकी है। इस पर्वतपर चार वन हैं—भद्रसाल, नंदन, सौमनस और पाडुक। इन चारों वनोंमें चहुं ओर चार २ अकृत्रिम—बिना बनाये—अनादिनिधन जिनचैत्यालय हैं, जहाँपर देव, विद्याधर तथा इन्हींकी सहायता पाकर अन्य पुण्यवान् पुरुष दर्शन, पूजन, ध्यान करके अपना आत्मकल्याण करते हैं।

अंतके पांडुकवनमें चहुं दिश चार अर्द्धचन्द्राकार शिलाएं हैं, जिनपर इन्द्र श्रीतीर्थंकर देवका जन्मकल्याणके समय विराजमान कर १००८ क्षीरसागरके नीरके कलशोंद्वारा अभिषेक करता है। इस पर्वतकी तलहटीमें चारों ओर चार गजदंत (हाथीके दाँतोंके सदृश आकारवाले) पर्वत हैं, इनपर भी अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

---

१ योजन=४००० मील अर्थात् २००० कोस.

इस पर्वतके उत्तर और दक्षिणमें हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ऐसे छह महापर्वत दण्डाकार पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक आड़े फैले हुए है, जिनके कारण जंबूद्वीपके स्वाभाविक सात भाग हो गये है। सुदर्शनमेरुके आसपासके क्षेत्रका जो पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक दो महापर्वतोंके मध्यमें पड़ा हुआ है, नाम विदेहक्षेत्र है। यहांपर सदैव बीस तीर्थंकर विद्यमान रहते है। जिनके अनादिसे ये ही नाम होते आये है—सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभु, ऋषभानन, अनतवीर्य, सूरप्रभु, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरषेण, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य। यहांके मनुष्योंके आयु, काय, बल, वीर्यादि सदैव चौथे कालके मनुष्योंके प्रमाण होते है तथा सदैव इस क्षेत्रसे जीव कर्मको नाशकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अर्थात् यहांपर काल चक्रकी फिरन नहीं है इसीसे इसका नाम विदेह क्षेत्र हुआ। बाकी उन महापर्वतोंके दोनों ओर भरत, ऐरावत, हमवत्, हरि, रम्यक, हैरण्यवत्, ऐसे षट्क्षेत्र और है। इनमेंसे ऐरावत उत्तरकी ओर और भरत नामका क्षेत्र दक्षिणकी ओर बिलकुल समुद्र तटपर है। इन दोनोंके मध्यमें एक एक वैताढ्य पर्वतके पड़ जानेसे दो दो भाग हो गये हैं और महापर्वतोंसे दो दो महानदी निकल कर उत्तर दक्षिण समुद्रमें जाकर मिली है, जिससे एक भागके तीन तीन भाग हो गये हैं। इन सबको मिलाकर दोनों क्षेत्रके छह छह भाग हुए अर्थात् छ ऐरावतके और छ भरतके इन छह छह खंडोंमेंसे अत्यन्त उत्तर और दक्षिण भागमें समुद्रसे मिला हुआ एक एक

आर्यखंड है और इसकी तीनों दिशाओंमें पाँच पाँच म्लेच्छखंड है। इन्हीं आर्यखंडोंमें त्रेशठ शलाकादि उत्तम पुरुषोंकी उत्पत्ति होती है और इन्हीं खंडोंमें अवसर्पिणी, उत्सर्पिणीके सुषमासुषमा आदि छः कालोंकी फिरन होती है।

इस ही भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें एक मगध नामका देश और राजगृही नामकी नगरी है। इसीके पास उदयगिरि, सोनागिरि, खंडगिरि, रत्नागिरि और विपुलाचल नामकी पंच पहाड़ियाँ हैं। इन पहाड़ियोंके कारण यह स्थान अत्यन्त मनोग्य मालूम होता है।

पूर्व समयमें इस नगरीकी शोभा अवर्णनीय थी। नाना प्रकारके वन, उपवन, कुवे, वावड़ी, तालाव, नदी आदिसे शोभित थी। चारों ओर वडे वड़े उत्तंग गगनचुंवी महल और ठौर ठौर जिन-मंदिर ऐसे वन रहे थे, मानों अकृत्रिम चैत्यालय ही हों। वे मंदिर नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित थे—कहीं तो स्वर्गकी संपत्ति दृष्टिगत होती थी, तो कहीं नरककी वेदना दिख रही थी, कहीं तिर्यंचगतिके दुःखोंका दृश्य दिखाई दे रहा था, तो कहीं रोगी, वियोगी, शोकी नर-नारियोंका चित्र खिंच रहा था, कहीं भव-भोगोंसे विरक्त परम दिगंबर ऋषि अपनी ध्यान-मुद्रामें मग्न हुए तीन लोककी संपत्तिको तृणवत् त्यागे हुए निश्चल ध्यानयुक्त वैठे हुए मालूम हो रहे थे, कहीं श्रीजिनेन्द्रकी परम वीतरागी मुद्राको देखकर तीव्रकषायी भी

१, म्लेच्छखंड उसे कहते है जहांके लोग स्वेच्छाचारी अधर्मी-धर्म-ज्ञानरहित हों। इन खंडोंमें भी कालचक्रकी फिरन नहीं है।

२. यह नगरी विहार स्टेशनसे अनुमान १० कोशपर है। इस समय विलकुल उजाड़ हो रही है।

जीव शांत हो बैठा था। अर्थात् जहाँ संसार दशाका भले प्रकार अनुभव होता था, ऐसे जिनमंदिर तोरन पताकादि कर शोभायमान थे। ऐसी अनेक शोभाकर संयुक्त वह नगरी थी, जहाँ भिक्षुक, भयवान् व दरिद्री पुरुष तो दृष्टिगोचर ही नहीं होते थे। यहाँका महामंडलेश्वर राजनीतिनिपुण, न्यायी, यशस्वी और महाबली राजा श्रेणिक राज्य करता था। जिसकी बहुतसे मुकुटबंध राजा आज्ञा मानते थे।

एक समय जब कि राजा श्रेणिक राजसभामें बैठे थे कि उस समय वनमालीने आकर छहों ऋतुके फल फूल राजाको भेंट करके विनय की-भो स्वामिन्! विपुलाचल पर्वतपर अंतिम तीर्थंकर श्रीमहावीर जिनका समवसरण आया है, जिसके प्रभावसे ये सब ऋतुओंके फल फूल फल फूल गये है। वापी, कुवे, तालाव आदि सब भर गये हैं।

राजा यह समाचार सुन अत्यानान्दित हुआ और तुरंत ही सिंहासनसे उतर सात पैड़ चलकर प्रभुकी परोक्ष वंदना की। पश्चात् मुकुटको छोड़कर शेष सब वस्त्राभूषण जो उस समय उनके शरीरपर थे, उतारकर वनमालीको दे दिये और नगरीमें घोषणा कराई कि वीर प्रभु जिनका समवसरण विपुलाचल पर्वतपर आया है, इसलिये सर्व नगरके नर-नारी वंदनाको चलो। घोषणाको सुनकर पुरजन बहुत हर्षित हो स्वशक्तिप्रमाण अष्ट द्रव्य ले लेकर वंदनाको चले। उस समय राजा प्रजा सहित जाता हुआ ऐसा मालूम होता था मानों इन्द्र ही सेनासहित दर्शनको आया हो। जब वे समवसरणके निकट पहुँचे, तब रथसे उतर पाँव प्यादे चलने लगे। सो प्रथम ही

मानस्थंभको, जिसके देखनेमात्रसे मानी पुरुषोंका मान जाता रहता है, दर्शनकर समवसरणमें प्रवेश किया और तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार कर श्रीजीकी पूजा करके मनुष्योंके कोठेमें जा बैठा। और बहुत प्रकारसे स्तुति करके विनती की-" हे नाथ ! कृपा करके मुझे संसारसे पार करनेवाले धर्मका उपदेश दीजिये " तब प्रभुकी दिव्यध्वनि खिरी और तदनुसार गौतमस्वामीने, जो चार ज्ञानके धारी प्रथम गणधर थे, कहा,-

" हे राजा ! सुनो. इस अनादिनिधन संसारमें यह जीव अनादि कर्मोंके वश हुआ बावलेकी तरह चतुर्गतिमें भ्रमण करके नाना प्रकारके जन्म और मरण आदि दुःखोंको सहता है। यह जीव मिथ्या भ्रमसे पर वस्तुओंमें आपा मान कर आपको भूल रहा है और अपनी अलख संपत्ति और अविनाशी सुखका अनुभव न कर इन्द्रिय विषयोंमें आसक्त हो सुखी होना चाहता है, परन्तु जहाँ तृष्णारूपी अग्नि प्रज्वलित है वहाँ भोग सामग्रीरूप ईंधनसे तृप्ति कहाँ ? ज्यों ज्यों यह विषयभोगकी सामग्री मिलती जाती है त्यों त्यों विषय तृष्णाकी इच्छाएँ बढ़ती ही चली जाती हैं। प्रत्येक जीवको इतनी तृष्णा है कि तीन लोककी सामग्री भी कदाचित् मिल जाय, तो भी इस जीवके आशारूपी गड्ढेका असंख्यातवाँ भाग भी न भरे परन्तु लोक तो एक, और जीव अनंतानंत है, और प्रत्येक जीवको इस प्रकारकी तृष्णाएँ व इच्छाएँ है सो इनमें सुखकी इच्छा करना, मानो पत्थरपर कमलका लगाना है। तात्पर्य यह-संसार दुःखमयी है, इसमें सुख रंचमात्र भी नहीं है। जिस प्रकार केलाका स्थंभ निःसार है, जलको मथनेसे

कुछ भी नहीं निकलता, उसी प्रकार संसार असार है। जो भव्य जीव सुखके अभिलाषी हैं वे इसे त्यागकर धर्मका सेवन करें। धर्म दो प्रकारका है-एक सागार (गृहस्थोंका) जिसे अणुव्रत या देशव्रत कहते हैं। दूसरा अनागार (साधुओंका) जिसे महाव्रत या सकलव्रत भी कहते है। पहिला परम्परा सच्चे सुख—मोक्षका साधन है। दूसरा साक्षात् मोक्षका साधन है।"

इस प्रकार स्वामीने संक्षेपसे संसार दशाका स्वरूप वर्णन करके दो प्रकारके धर्मका स्वरूप वर्णन किया। इतनेमें एक देव वहां आया और नमस्कार कर अपनी सभामें जा बैठा। उसकी अपूर्व कांति देखकर राजा श्रेणिक बड़े आश्चर्यमें होकर पूछने लगे-हे स्वामिन्! यह देव कौन है? तब स्वामीने कहा-' यह विद्युन्माली नाम देव है और अब इसकी आयु तीन दिनकी शेष रह गई है" तब पुनः राजाने पूछा—"हे प्रभो। देवोंकी आयुके जब छह महीना बाकी रह जाते है, तब माला मुरझा जाती है और जब इस देवकी आयु केवल तीन ही दिनकी रह गई है तब भी इसकी कांति अनुपम है, सो हे प्रभो! कृपाकर इसका वृत्तांत कहिये।"

तब गौतमस्वामीजीने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया—"ऐ राजन्! सुनो, इसी देशमें वर्धमानपुर नामका एक सुन्दर नगर है, जहांका राजा महीपाल अत्यन्त धर्मधुरंधर और न्यायनीतिनिपुण था और जहाँ अनेक सेठ वास करते थे। ऐसे उत्तम नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो कि महामिथ्यात्वी था और लोगोंको निरंतर मिथ्या उपदेश देकर व्याह, श्राद्धादि नाना कर्मोंद्वारा अपनी आजीविका करता था उसके भवदेव और भावदेव नामके दो पुत्र विद्यामें

बहुत ही निपुण थे, परंतु पिताके अनुसार वे भी मिथ्यात्वसे न बच सके। कुछ समय पीछे वह ब्राह्मण कालवश हो अपने किये हुए मिथ्यात्व कर्मोंका प्रेरा हुआ दुर्गतिको चला गया और ये दोनों द्विजपुत्र उसी प्रकार अपना कालक्षेप करने लगे।

भाग्योदयसे एक दिन महातपस्वी श्रीदिगंबर मुनि नगरके उद्यानमें विहार करते हुए आये। तब द्विजपुत्र और सब नगरलोक मुनिकी वंदनाको गये और वंदना कर श्रीगुरुके मुखसे धर्मोपदेश सुना। सब लोगोंने यथाशक्ति व्रतादिक लिये और वह द्विजपुत्र भावदेव जो बड़ा था संसारका स्वरूप सुन कर विषय भोगोंसे विरक्त हो यह विचारने लगा कि यह समय बीत जानेपर फिर हाथ नहीं आयगा, काल अचानक ही आकर ग्रस लेगा और फिर सब विचार यहाँके यहाँ ही पड़े रह जायँगे। संसारमें सब स्वार्थके सगे है। यदि हितू कोई संसारमें है तो ये ही श्रीगुरु हैं, जो निष्प्रयोजन भवसागरमें डूबते हुए हम लोगोंको हस्तावलंबन दे कर पार लगाते हैं। सब वस्तुएं क्षणभंगुर है। जब हमारा शरीर ही नाशवान् है तो इसके सम्बन्धी पदार्थ अवश्य ही नाशवान् है। इसलिये अवसर पाकर हाथसे जाने नहीं देना चाहिये।

ऐसा विचारकर श्रीगुरुके निकट जिनदीक्षा धारण की। ठीक है—'शठ सुधरहिं सतसंगति पाई, लोह कनक है पारस पाई' महा-मूढ मिथ्यात्वी भी सतसंगके प्रभावसे चतुर विद्वान् हो जाता है। देखो, वह भावदेव ब्राह्मणका पुत्र जो परम्परासे तीव्र मिथ्यात्वी था, उसने भी श्रीगुरुके मुखसे सच्चा कल्याणकारी उपदेश सुनकर वैराग्यको प्राप्त कर जिनदीक्षा ले ली। वे भावदेव मुनि अपने गुरु तथा संघके

साथ अनेक देशोंमें विहार करते हुए बारह वर्ष पश्चात् पुनः इसी वर्धमानपुरके उद्यानमें आये।

एक दिन भावदेव मुनिने मनमें विचारा कि मेरा छोटा भाई भवदेव जो तीव्र मिथ्यात्वमें फँस रहा है, उसे किसी प्रकार समझाना चाहिये। यह विचार कर श्रीगुरुकी आज्ञा ले नगरमे जाकर अपने भाईके मकानमें प्रवेश किया। तब इनका छोटा भाई अपने बड़े भाईका आगमन देख अपना धन्य जन्म मान कर प्रफुल्लित हो स्तुति करने लगा। ठीक है—"छोटोंको बड़ोंकी विनय करना ही उचित है।" फिर उच्चासन देकर कुशल समाचार पूछा।

तब मुनि 'धर्मलाभ" देकर कहने लगे, कि जो पुरुष निशदिन जिन भगवानके चरणोंमें आसक्त रहता है, उसके सदैव ही कुशल रहती है। इसके पश्चात् मुनिवरने सभामंडप, कंकण, केशरिया बागा आदि सामग्री, और स्त्रियोंको मंगल गान करते देख कर भवदेवसे पूछा—'यह सब क्या है?" तब भवदेवने कहा—आज रात्रिको मेरा व्याह हुआ है इसीका यह सब उत्सव है। तब मुनिराजने कहा कि यह तो सब कर्मजंजाल है, किंतु तुम्हें कुछ धर्मका भी ख्याल है या नहीं? तब भवदेवने धर्मश्रवण कर श्रीमुनिवरसे अणुव्रत ग्रहण किये और मुनिने संघकी ओर विहार किया। सो मुनिवर तो नीची दृष्टिकर ईर्यापथ सोधते हुए धर्मध्यानमें तल्लीन हुए जा रहे हैं और भवदेव केवल लोकरीतिके अनुसार पीछे पीछे यह विचारता हुआ जा रहा है कि बड़े भाई मुझे कब पीछे फिरनेकी आज्ञा दें और मैं कब शीघ्र ही घर जाकर अपनी नव विवाहिता स्त्रीसे मिलूँ।

इस प्रकार वे दोनों अपने २ ध्यानमें मग्न नगरसे लगभग १ कोस बाहर निकल गये, परंतु मुनिराजने भवदेवको पीछे लौटनेको न कहा। भवदेव मनमें विचारने लगा कि एक कोस तो आ गये, अब न मालूम भाई कितनी दूर जायँगे? जो मुझे आज्ञा दे देते तो मैं घर चला जाता। आगे जाकर भी क्या जानें ये मुझे पीछे आने देंगे कि नहीं? इत्यादि संकल्प करते चला जा रहा था। मुनिराज न तो इसे कहते थे कि साथमें आओ और न पीछे ही जानेकी आज्ञा देते थे। वे तो मौनावालंबन किये चले ही जारहे थे। वे मनमें विचारते थे कि यदि भवदेव गुरुके पास पहुँचकर इस असार संसारका परित्याग कर दे तो अच्छा हो, क्योंकि इसकी आत्माने जो मिथ्यात्वके वशवर्ती होकर अशुभ कर्मका बंध किया है सो जिनेश्वरी तपश्चरणसे छूट जायँगे और उत्तम सुख प्राप्त हो जायगा।

अहा! भ्रातृस्नेह इसीका नाम है कि भव-समुद्रमें गोते खाते हुए अपने भाईको निकालकर सच्चे सुख मार्गमें लगाना। संसारमें और ऐसे भाई विरले ही होते हैं, जो विषय कषायोंसे छुड़ावें। फँसानेवाले तो अनेक हैं। भावदेवने भवदेवके साथ जो सच्चा प्रेम प्रगट किया वह अनुकरणीय है।

इसी प्रकार अपने २ विचारोंमें निमग्न हुए वे दोनों भाई नगरसे अनुमान तीन कोस दूर वनमें जा पहुँचे, जहाँ श्रीगुरु संघसहित तिष्ठे थे। दोनोंने यथायोग्य गुरुको विनयसंयुक्त नमस्कार किया और निज निज योग्य स्थानमें बैठ गये। तब संघके दूसरे मुनियोंने पूछा—'यह दूसरा आपके साथ कौन है?' भावदेव मुनिने उत्तर दिया—"यह हमारा छोटा

भाई है, जो श्रीगुरुके दर्शनको आया है। यह गुरुके प्रसादसे सच्चे मार्गमें लग जायगा" यह सुन सब मुनि सराहना कर कहने लगे-'हे मुने! यह तुमने बहुत ही अच्छा किया जो संसार सागरमें बहते हुएको पार लगाया। अब इसे जिनेश्वरी दीक्षा लेना चाहिये, ताकि कर्मोंको काटकर अविचल अविनाशी सुख प्राप्त करे।'

यह बात सुनकर भवदेव विप्र विचारने लगा-'हे विधाता! यह क्या हुआ? अब मैं क्या करूं? जो दीक्षा ले लूँ तो आजको ब्याही स्त्री क्या कहेगी? और वह कैसे जीवन व्यतीत करेगी? लोग मुझे क्या कहेंगे? और जो घर जाऊं तो भाईकी बात जाती है। ये साथके मुनि उनका हास्य करेंगे कि इनका भाई, इतना कायर है। ये ऐसे कापुरुषको क्यों लाये? इत्यादि।"

ऐसा विकल्प करते २ उसने यह निश्चय किया कि इस वक्त तो जैसा ये लोग कहें वैसा ही कर लूँ और कुछेक दिन मुनि ही बनकर रहूँ फिर ज्यों ही कोई मौका हाथ लगा कि त्यों ही तुरत भागकर घर चला आऊँगा, यह सोच जिनदीक्षा ले ली। श्रीगुरुने उसे भव्य जानकर कि यद्यपि अभी इसके मनमें दुर्ध्यान है परतु पीछे यह मुनिनायक होगा, दीक्षा दे दी। पश्चात् यह मुनिसंघ कई देशोंमें विहार करता और अनन्त भव्य जीवोंको संबोधन करता हुआ, बारह वर्ष पीछे फिर उसी वनमें आया। तब भवदेवने मनमें यह विचार कर कि अब जाकर अपनी स्त्रीको देखना चाहिये, गुरुको नमस्कार कर नगरकी ओर चले। सो ईर्यापथ सोधते हुए जिनालयमें पहुँचे और प्रभुकी वन्दना कर बैठे।

इतनेमें वहाँ एक आर्यिकाको देख। परस्पर रत्नत्रयकी कुशल

पूछकर श्रीमुनि उस आर्यिकासे पूछने लगे कि इस नगरमें दो ब्राह्मणपुत्र रहते थे सो वे दोनों तो जिनदीक्षा लेकर विहार कर गये थे, उनमेंसे छोटा लड़का जो तुरत व्याहकर लाई हुई नववधूको छोड़ कर चला गया था, सो उस वधूका क्या हाल हुआ ?

यह सुन वह आर्यिका मुनिका चित्त चंचल होता जानकर बोली– हे स्वामिन् ! हे धीरवीर ! आप अपने चित्तको शांत कीजिये। आप धन्य हैं जो ऐसा उत्तम व्रत लिया। यह कार्य कायर संसारी पुरुषोंसे नहीं बन सकता। इस योग्य आप ही हो। इत्यादि स्तुति कर कहने लगी–

'नाथ ! वह स्त्री मैं ही हूँ। आपके चले जानेके पीछे मैंने इस स्त्री पर्यायको पराधीन जानकर इससे छूटनेके लिये यहाँ आर्यिकाके व्रत लिये और घरको तुड़वाकर उसका चैत्यालय करवाया और जो कुछ शेष द्रव्य था वह भी इसी चैत्यालयमें लगा दिया गया है। अब हे मुनिनाथ ! आप निःशंक होकर तपश्चरण करें।'

यह सुनकर मुनि निःशल्य हो वनमें गये और श्रीगुरुको नमस्कार कर सब वृत्तांत कहा। तब श्रीगुरुने भवदेव मुनिकी दीक्षा छेदकर फिरसे व्रत दिये। इस प्रकार वे दोनों भाई मुनि उग्र तप करते हुए विपुलाचल पर्वतपर आये और आयुके अन्तमें समाधिमरण कर सानत्कुमार तीसरे स्वर्गमें देव हुए। वहाँ अतुल सम्पदा देख अवधिज्ञानसे अपना पूर्व भवका वृतांत चिंतवन करके विचारा कि यह संपत्ति जिनधर्मके प्रभावसे ही मिली है, ऐसा जानकर वे धर्ममें तत्पर हुए। अनेक देव देवांगनाओं सहित अढ़ाई द्वीप संबंधी तथा सर्व अकृत्रिम तथा कृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना की।

इस प्रकार वे देव स्वर्गमें सागरों पर्यन्त सुख भोग वहाँसे चय, भावदेवका जीव अपरविदेह पुंडरीकिणी नगरीमें वज्रदंत राजाकी पट्टरानीसे सागरचन्द्र नामका पुत्र हुआ, और भवदेवका जीव वीतशोकपुरमें महापद्म चक्रवर्तीके यहाँ वनमाला रानीके गर्भसे शिवकुमार नामका पुत्र हुआ। सो वे दोनों निज निज स्थानमें वृद्धिको प्राप्त होकर अनेक प्रकारकी विद्याओंका अभ्यास करने लगे।

एक समय पुंडरीकिणी नगरीके उद्यानमें मुनिवरका आगमन जानकर सागरचंद्र राजपुत्र वंदनाको गया और श्रीगुरुको नमस्कार कर धर्मका स्वरूप पूछा। तब स्वामीने मुनि और श्रावकके व्रत और संसारकी क्षणभंगुरताका वर्णन किया, तथा सागरचन्द्रके पूर्वभव भी वर्णन किये। यह सुनकर सागरचद्र संसार देह भोगोंसे विरक्त हो मुनि हुआ और निरतर जप तप संयममें उत्तरोत्तर अधिक तत्पर रहने लगा। बहुत समय पीछे सागरचन्द्र मुनि गुरु सहित विहार करके वीतशोकपुर नगरके उद्यानमें आये और यह शरीर तप व्रतादिका साधन है सो आयु प्रमाण स्थिर रहे और धर्मध्यानमें किसी तरह शिथिल न होने पावे, जैसे चाकमें तेल देनेसे गाड़ी बेरोक चली जाती है, इसी तरह यह भी शिथिल हुए विना मोक्ष नगरके द्वार तक अरोक चला जाय, ऐसा चिंतवन कर उदासीन वृत्तिसे नगरमें चर्या निमित्त प्रयाण किया श्रावकगण द्वाराप्रेक्षण कर हो रहे थे, सो उन्हें नवधा भक्ति सहित पड़गाहन कर मुनको आहार दिया। मुनिराजने 'अक्षयदान हो" ऐसा कह दिया। सो मुनिदानके प्रभावसे वहाँ पंचाश्चर्य (रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, गंधोदककी वृष्टि, मंद सुगंध पवन और देवदुंदुभि) हुए। इससे नगरके सब लोगोंको आश्चर्य हुआ

और वे यह कौतुक देखनेको वहाँ एकत्र हो आये।

इसी समय शिवकुमार नाम राजपुत्र भी वहां आया और मुनिको देख मोहयुक्त हो विनय सहित नमस्कार कर मोह उत्पन्न होनेका कारण पूछा। तब उसे स्वामीने पूर्व भवोंका वृत्तांत सुनाया। सुनते ही राजपुत्रको मूर्छा आ गई। यह वृत्तांत मंत्रियोंने जाकर राजासे कहा और राजपुत्रको उपचार कर सचेत किया। राजा रानी सहित तुरंत ही वहाँ आये, और पुत्रको घर ले जाने लगे। तब शिवकुमार बोले-"हे पिता! ये भोग भुजंगके समान है, क्षणभंगुर हैं। मैं अब घर न जाऊंगा, किन्तु महाव्रत लेकर यहाँ ही गुरुके निकट स्वात्मानुभव करूँगा।"

तब राजा बोले-'पुत्र! अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है, कोमल शरीर है, जिनदीक्षा अतिदुर्धर है, इसलिये कुछेक दिन राज्य कर हमारे मनोरथोंको पूर्ण करो। पीछे अवसर पाकर व्रत लेना। यह अवस्था तप करनेकी नहीं है। इत्यादि नाना प्रकार राजाने समझाया परंतु जब देखा कि कुमार मानते ही नहीं तब लाचार हो कहने लगे-

पुत्र! यदि तुम्हें ऐसा ही करना है, तो मुनिव्रत न लेकर क्षुल्लकके ही व्रत लो और यदि ऐसा न करोगे तो मैं प्राणत्याग करूँगा। तब शिवकुमारने माता पिताके वचनानुसार क्षुल्लकके व्रत लिये। घरमें ही रहकर चौसठ हजार वर्ष तक केवल भात और पानीका आहार कर निरंतर धर्मध्यानमें काल व्यतीत किया और सागरचन्द्र मुनि यहाँसे विहार करके उग्र तप करते हुए समाधिमरणकर ब्रह्मोत्तर छठवें स्वर्गमें देव हुए और शिवकुमार क्षुल्लक भी

अवसर पा समाधिमरणकर उसी ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देव हुए और पूर्वतपके प्रभावसे नाना प्रकार सुख भोगने लगे। सो हे राजन्! यह विद्युन्माली देव पूर्व तपस्याके प्रभावसे ऐसा अद्भुत कांतिवान् हुआ है।"

तब राजा श्रेणिकने विनययुक्त हो पूछा—"हे प्रभो! इनका विशेष हाल सुनाना चाहता हूं सो कृपा कर कहो। तब स्वामी बोले—

'अंग देशमें चंपापुरी नामकी एक नगरी है, वहाँ सूरसेन नामका सेठ रहता था। उसके अतिरूपवती चार स्त्रियाँ थीं। एक समय किसी पूर्व पापके उदयसे सेठको वायुरोग हो गया जिससे वह बावलेकी तरह बकने और स्त्रियोंको नाना प्रकारसे कष्ट देने लगा। यहाँतक कि उसने चारों स्त्रियोंके नाक, कान भी काट डाले इससे वे अतिदुःखित होकर वासुपूज्यस्वामीके चैत्यालयमें जाकर आर्यिका हो गईं और समाधिमरण करके इस ही छठवें स्वर्गमें चारों देवी हुई है। सो जंबूस्वामी, विद्युतचर और ये देवियाँ यहाँसे चय साथ ही दीक्षा लेवेंगी।"

इसका विशेष वर्णन इस प्रकार है सो सुनो—"हस्तिनापुरके राजा दुरदन्दके शिवकुमारका जीव छटवें स्वर्गसे चयकर विद्युतचर नामका पुत्र हुआ, सो महाबलवान्, प्रतापी और सर्व विद्याओंमें निपुण हुआ। यहाँ तक कि उसने चोरी भी सीख ली सो प्रथम ही उसने राजभंडार चुरानेको प्रवेश किया ही था कि उसे कोटवालने पकड़ कर राजाके सन्मुख उपस्थित कर दिया। राजा पुत्रकी यह दशा देख बहुत दुःखी हुए और कहने लगे—"हे बालक! तू यह सब राजभंडार ले, परंतु चोरी करना छोड़ दे क्योंकि इच्छित वस्तु

प्राप्त होनेपर कोई चोरी नहीं करता। परंतु विद्युतचरने एक न मानी। रोगीको कुपथ्य ही भला मालूम होता है, पीछे चाहे प्राण ही क्यों न चले जावें। निदान राजा अत्यन्त खेदित हो कहने लगे—"जो तुम यह दुष्ट कृत्य नहीं छोड़ोगे तो किसी न किसी दिन अवश्य ही तुम्हारे प्राण जायगे और वहुत दुःख उठाओगे।" तब विद्युतचर बोला—"पिताजी! मुझसे यह कृत्य नहीं छूटेगा। मैं तो चोरी करके सब राज्यको लूट लूट कर खाऊंगा अथवा आपका राज्य छोड़ विदेशमें चला जाऊँगा।" यह सुन राजाने लाचार हो देशसे निकल जानेकी आज्ञा दे दी। सत्य है न्यायी पुरुषोंका यही धर्म है कि चाहे अपना पुत्र हो व पिता अथवा कैसा ही स्नेही क्यों न हो, उसको अपराध करनेपर अवश्य ही योग्य दण्ड देते हैं—पक्षपात कदापि नहीं करते।

विद्युतचर राजपुत्र वहांसे निकलकर कई दिनोंमें राजगृही आया और कमला वेश्याके यहाँ रहने लगा। वहाँ वह सब नगरसे चोरी कर २ के वेश्याका घर भरने और इस तरह कालक्षेप करने लगा।

इसी राजगृही नगरीमें अर्हद्दास नामका सेठ था, उसके जिनमती नामकी महा शीलवती स्त्री थी। सो यह विद्युन्वेग देव जिसकी तीन दिनकी आयु शेष रह गई है स्वर्गसे चयकर उसके पुत्र होगा और तप करके भव जाल तोड स्वात्मानुभूतिरूप सच्चा सुख प्राप्त करेगा।

गौतमस्वामीके मुखसे यह कथन हो ही रहा था कि एक यक्ष वहाँ गद्गद हो नाचने लगा तब राजा श्रेणिकने विस्मित होकर

पूछा—"हे स्वामिन् ! यह यक्ष क्यों नाचता है ?" स्वामीने उत्तर दिया कि—"अर्हद्दासका सहोदर भाई रुद्रदास था, सो महा कुरूप, व्यसनासक्त था । एक दिन वह अपना सब धन जुआमें हार गया तब उधार लेकर खेला, और जब वह भी हार गया, और घरमें भी कुछ न रहा तब उधार लिया हुआ ऋण दे कहांसे ? निदान साथके खिलाड़ी दूसरे जुआरियोंने, जिनसे उसने ऋण लिया था उसे बाँधकर बहुत ही मारा, यहाँतक कि उसे बेसुध कर दिया ।

जब यह खबर अर्हद्दासको मिली तो तुरंत ही उसने रुद्रदासको खाटपर रखाकर घर मँगाया और अंतिम वेदना जानकर सन्यास मरण कराया । सो यह उस रुद्रदासका जीव सन्यासके योगसे यक्ष हुआ है और अब अपने वंशमें मोक्षगामी पुरुषकी उत्पत्ति सुनकर हर्षित हो नाच रहा है । "

यह वृत्तांत गौतमस्वामीके मुखसे सुनकर सभाजनोंको अत्यानन्द हुआ और अर्हद्दास तथा उनकी सेठानीके तो आनन्दका पार ही नहीं रहा । जैसे भिक्षुकको कुबेरकी संपत्ति पानेसे होता है, उसी प्रकार सर्व नगरमें आनन्द ही आनन्द भर गया । घरोंघर मंगल गान होने लगा । एक दिन सेठानी जिनमती शयनगृहमें सुखनींद ले रही थी कि उसी समय वह विद्युतवेग देव ब्रह्मोत्तर स्वर्गसे चयकर सेठानीके गर्भमें आया । सेठानीने यह शुभ स्वप्न पिछली रात्रिमें देखा और अपने पतिसे उस स्वप्नका फल पूछा । ठीक है—"सती स्त्रियाँ लाभ-अलाभ जो कुछ भी हो, सच्चा हाल अपने पतिसे ही कहती है " तब सेठने स्वामीके

मुखसे सुने हुए वृत्तांतको स्मरणकर तथा निमित्तशास्त्रद्वारा स्वप्नका फल विचार कर कहा—

"प्रिये! तुम्हारे गर्भसे त्रैलोक्यतिलक मोक्षगामी पुत्र होगा।" यह सुनकर सबको अतिहर्ष हुआ और समय जाते हुए भी कुछ मालूम न हुआ। पूर्ण दस मास बीत जानेपर अर्हदास सेठके घर पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई, घरोंघर मंगल गान होने लगे, याचकोंको इच्छित दान दिया गया और स्वजन सुहृद् इत्यादि पुरुषोंका भी यथायोग्य सन्मान किया गया। यह बालक दिन प्रतिदिन ऐसा बढ़ने लगा, मानों चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित विस्तारको प्राप्त हो रहा हों। ज्योतिषियोंने लग्न विचारकर शुभ नाम 'जंबूस्वामी' रखा। इनका ऐसा अनुपमरूप था कि जिसे देखकर नगरवासी राजा प्रजा सबके चित्तको आनन्द होता था।

जब स्वामी दस वर्षके हुए, तब वस्त्राभूषण धारणकर अपने संगके बालकोंमें खेलते हुए ऐसे मालूम होते थे मानों तारागणोंमें चन्द्र ही है। नगरके लोग धन्य धन्य कहकर आशीर्वाद देते थे। जहाँ जिस रास्तासे स्वामी निकल जाते, वहींपर लाखों आदमियोंकी भीड़ हो जाती थी। यहाँ तक कि नर-नारी अपने आवश्यक कामोंको भी विस्मरण कर जाते थे।

एक दिन राजा क्रीडा निमित्त वनमें गये थे और सब पुरजन भी आनंदमें मग्न थे कि अचानक राजाका पट्टबंध हाथी छूट गया और नगरमें जहाँ तहाँ ऐसा घोर उपद्रव करने लगा मानो प्रलय काल ही आ गया हो। नर-नारी अत्यंत भयभीत हो पुकारने लगे। बाट और हाट सब बंद हो गये। कोई भी निकल

नहीं सकता था। यह खबर राजातक पहुँची और वहाँसे बड़े २ योद्धा भी आ गये, परन्तु कुछ फल न हुआ। इसी समय स्वामी जंबूकुमार अपने मित्रों सहित कहीं जा रहे थे कि हाथी सूंड़ उठाकर इनकी तरफ आया, मानों वह सूँड़ उठाकर स्वामीको नमस्कार ही करता था। यह देख साथी तो सब डरकर भाग गये, परतु स्वामी उस हाथीकी चेष्टा देखकर हँसे। नगरके लोग तो हाय हाय करके पुकारने लगे कि अब क्या जानें यह हाथी इस बालकको छोड़ेगा या नहीं? दोड़ियो २ बचाइयो २ इत्यादि कहकर चिल्लाने लगे परंतु स्वामीने किंचित् भी भय न किया, और हाथीके सम्मुख आ कपड़ेको अमेठ कर जोरसे हाथीको मारा कि वह हाथी चींस मार भागने लगा। तब स्वामीने उसे पूँछ पकड़के रोक लिया और उसपर चढकर सात बार यहाँ वहाँ खूब दौड़ाया। नगरके लोग व राजा यह कौतुक देख हर्ष और आश्चर्ययुक्त होगये। स्वामीको हाथीपर बैठे हुए घर आये देख माता पिता झटसे गोदमें ले मुख चूमने और बलैयाँ लेने लगे तथा निछरावळ कर पूछा—'पुत्र! ऐसे कोमल पल्लवसमान हाथोंसे तुमने किस तरह ऐसे मदोन्मत्त हाथीको पकड़ लिया"? स्वामीने विनयपूर्वक उत्तर दिया—"पिताजी! आपके चरणोंके प्रसादसे ही पकड़ा है। ठीक है—

"बड़े बड़ाई ना करें; करें अपूरब काम।
हीरा मुखसे ना कहै; लाख हमारो दाम"॥

इतनेमें स्वामीको बुलानेके लिये राजदूत आया और बड़े सन्मानसहित राज्य दरबारमें ले गया। स्वामीको दरबारमें आते देख सभाजनोंने उठकर नमस्कार किया और राजाने भी उठकर अगवानी

की, तथा अर्ध सिंहासनपर बैठाया। पश्चात् बहुत प्रीतिसहित बातचीत होनेके बाद राजाने कहा—"कुमार! मैं चाहता हूं कि आप नित्यप्रति दरबारमें आया करें," तब स्वामीने वह स्वीकार किया। पश्चात् राजाने छत्र, चमर, रथ, पालकी आदि देकर इन्हें विदा किया।

एक दिन अर्हद्दास सेठ अपने घरमें सुखासनपर बैठे थे कि बहुत द्रव्यवान् चार सेठ आकर विनती कर कहने लगे—"हे साहु! हमारे घर चार अति ही रूपवती और गुणवती कन्याएं हैं, सो हम आपके चिरंजीव जंबूकुमारको देना चाहते हैं, आशा है कि आप यह तुच्छ भेट स्वीकार कीजियेगा।" तब अर्हद्दास सेठ आगन्तुक सेठोंको आदर सहित बैठाकर अपनी प्रिया जिनमतीके पास जा सब वृत्तांत कहने लगे। सो सुनकर सेठानी अतिहर्षित हो बोली—"स्वामिन्! यह व्यवहार उचित ही है; अवश्य ही करना चाहिये। इस प्रकार पति-पत्नीने सम्मतिपूर्वक शुभ मुहूर्तमें सगाई (वाग्दान) कर दी और उत्साह मनाया। स्वामी नियमानुसार नित्य राजदरबारमें जाने लगे।

एक दिन अंगकीट नाम पर्वतका रहनेवाला गगनगति नाम विद्याधर सभामें आकर कहने लगा—"हे नरपाल! इसी अंगकीट पर्वतपर केरलपुर नाम नगर है। वहाँ राजा मृगांक जो कि मेरा बहनोई सुखसे राज्य करता है, उसके मंजु नामकी एक कन्या है सो एक दिन राजाने मुनिसे पूछा—पुत्रीका वर कौन होगा? तब मुनिवरने कहा कि "राजगृहका राजा श्रेणिक होगा" यह सुनकर राजाने वह कन्या आपको देना निश्चय किया किन्तु जब यह खबर

राजा रत्नचूलको लगी, तब उसने राजा मृगांकके पास दूत भेजा, कि तुम्हारी कन्या मंजु, जो अपनी कुशल चाहते हो तो मुझे, दो। राजा दूतके वचन सुन चिंतातुर हुआ और क्रोध कर दूतसे कहा कि जाकर अपने स्वामीसे कह दे कि कन्या तो राजा श्रेणिकको दे चुका सो अब दूसरेको नहीं दी जा सकती है। तब दूतने पीछे आकर सब हाल राजा रत्नचूलसे कहा। अब रत्नचूलने आकर केरलपुर घेर लिया है और आपकी मॉग लेनेको दबाव डाल रहा है। नगरमें बहुत ही विघ्न कर रहा है, इसलिये महाराज! अपने श्वसुरकी सहायताको चलो।"

यह बात सुनकर राजा श्रेणिक विचारने लगे, क्या करना चाहिये? जो जाता हूँ तो वह विद्याधर और मैं भूमिगोचरी हूँ और मार्ग भी विषम है, किस प्रकार पार पड़ेगी? और नहीं जाता तो मॉग, जो कि एक गरीबकी भी कोई नहीं ले सक्ता है, जाती है यह बड़ी लज्जा तथा कायरपनकी बात है। इस प्रकार दुचित्ते हो राजा चिंतातुर हो रहे थे कि वह विद्याधर फिर कहने लगा—"हे राजन्! वह रत्नचूल बहुत ही पराक्रमी और बलवान् है, सेना भी बहुत साथ है, सिवाय इसके वह विद्याधर है! रास्ता अति ही विषम है। भूमिगोचरी वहाँपर जा नहीं सकता है।" यह सुनकर स्वामी जंबूकुमार बोले—

"अरे मूर्ख! तू क्या वचन बोल रहा है? सभाके मध्य रत्नचूलकी प्रशंसा करके राजा श्रेणिकको छोटा बता रहा है। काम पड़े बिना हे अज्ञान! तूने कैसे जान लिया कि राजा श्रेणिककी गम्य नहीं है। चुप रहो, ऐसे वचन फिर सभामें न कहना।"

तब विद्याधर कहने लगा—" हे कुमार ! तुम अभी बालक हो। युद्धके विषयमें नहीं समझते. इसलिये शीघ्रता करना उचित नहीं है। व्यर्थ खेद मत करो। "

यह सुनकर स्वामीने कहा—" अग्निका एक कण तो काष्ठके समूहको क्षणभरमें ही भस्म कर देता है, सिंहका बालक ही क्षण-मात्रमें मदोन्मत्त हाथीका कुंभस्थल विदार डालता है। देखो लगाम और अंकुश तो छोटे २ ही होते है परतु घोड़े और हाथीको वश कर लेते है। रामचद्र, लक्ष्मण भूमिगोचरी हो थे, सो रावण प्रतिहरिको जीतकर सीताको ले आये और लंका वश की इससे रे विद्याधर ! छोटी वस्तुको हीन न समझना "। ऐसा विद्याधरसे कह राजाके प्रति प्रार्थना की—हे नाथ ! यह कोई कठिन कार्य नहीं है। आज्ञा हो तो मैं जाकर अन्यायीका मद चूर्णकर उस कन्या-को ले आऊ ? "

राजाने स्वामीकी बात सुनकर प्रसन्न हो कुँवरको बीड़ा दे दिया और विद्याधरसे कहा-" कुँवरको कुशलपूर्वक ले जाओ। " विद्याधरने सहर्ष स्वीकार किया। स्वामीने वहाँसे घर आ अपने माता पिताकी आज्ञा लेकर प्रयाण किया सो थोड़ी ही देरमें विद्याधरके साथ विमानद्वारा केरलपुरमें पहुँचे और वहाँका सब वृत्तांत पूछने-पर मालूम हुआ कि मृगांक तो किलेमें डरके मारे बैठ रहे है और चहुँ ओर रत्नचूलका दल फैल रहा है।

यह हाल सुन स्वामी दूतका भेष धर रत्नचूलकी सेनामें गये और भलीभाँति देखकर ड्योढीपर पहुँचे। द्वारपालसे कहा—राजाको खबर करो कि राजा मृगाकका दूत आया है और आपसे

व्याहके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहता है। द्वारपालने राजासे जाकर विनय की और शीघ्र ही स्वामीको अन्दर ले गया। स्वामीने अन्दर जाकर राजाको नमस्कार नहीं किया और यों ही खड़े हो गये। राजाने यह ढिठाई देखकर कहा—' अरे अज्ञान ! तुझे दूत किस मूर्खने बनाया है ? तुझे दूतका व्यवहार तो कुछ भी मालूम नहीं है। तूने आकर नियमानुसार नमस्कार क्यों नहीं किया ?"

यह वचन सुनकर स्वामीने थोड़ा क्रोधकर कहा—"जो राजा अनीति करता है उसे नमस्कार कैसा ?"

राजा बोले—"अरे बालक ! तुझे क्या हवा लग गई है भला, कह तो सही मैंने क्या अनीति की है ? बालक जानकर मैं तो तुझसे कुछ कहता नहीं हूं, परन्तु तू उलटा हमहीको दोष देता है।" तब कुमारने हँसकर कहा कि "आपको अपनी अनीति नहीं दीखती है ? ठीक है—"अपने माथेका तिलक सीधा है या टेढ़ा, यह बिना दर्पण अपनेको दृष्टि नहीं पड़ता।" सुनिये, आपकी यह अनीति है कि—

"जासु माँग सो ही वरे; देश देश यह रीति।
श्रेणिक माँग सु तुम चहो, यही सु महा—अनीति॥"

इसलिये ऐ विद्याधर-राजन्! इस खोटी हठको छोड़ निज देशमें जाओ और सुखसे राज्य करो। देखो, पहिले रावण, कीचक वगैरह जो अनीतिवान् परत्रिय लंपटी राजा हुए हैं, वे इस भवमें भी दुःख और अपकीर्ति सह कर नरकादि कुगतिको प्राप्त हुए हैं। इसलिये यह हठ अच्छा नहीं है।" यह सुन राजा क्रोध कर बोला—"लड़कपन मत कर। अभी तुझे मेरे

पराक्रमकी खबर नहीं है। बिना विचारे ढीठ हो बातें करता है। आज ही मैं मृगांकको बाँधकर उसकी पुत्रीसे पाणिग्रहण करूँगा।" तब स्वामीने उत्तर दिया—

"अरे राजन्! अब भी तुम चेत जाओ। जानकर विष खाना अच्छा नहीं है। देखो, काग भी आकाशमें उड़ता है परंतु बाणके लगते ही प्राण खो बैठता है। इससे जो तुम अपनी कुशल चाहते हो, तो इस दुराशाको छोड़कर श्रेणिक राजाके पास जा अपनी क्षमा मांगो, नहीं तो तुम्हारी भलाई नहीं है।"

ऐसी ढीठपनेकी बातोंसे रत्नचूलसे रहा नहीं गया, और क्रोध कर बोला—"इसने प्रथम तो मेरी विनय नहीं की और फिर सामने निंदा करता है। अभी बाहर ले जाकर इसे मार डालो।"

यह आज्ञा होते ही सुभट लोग कुमारको लेकर बाहर आये। यह देख दर्शकगण हाय हाय करने लगे कि क्या आज यह सुंदर बालक मारा जायगा? परंतु क्या करें? राज-आज्ञा शिरोधार्य है। ठीक ही है—

"पंडित जानदर भार्या; नौकर बंधुआ सोय।
पाराधीन इतने रहें; रंच न सुख इन होय॥"

नौकरको मालिककी हाँमें हाँ करना पड़ती है। स्वामी भले ही अन्याय करे, परंतु नौकरको तो उसे न्याय ही बताना पड़ता है। नौकरी और नकारसे तो वैर ही रहता है। यथार्थमें पापके उदयसे ही यह नीचातिनीच कृत्य नौकरी करनी पड़ती है। संसारमें कुछ भी सुख है तो स्वाधीनतामें। सो वह स्वाधीनता संसारियोंको कहाँ? वह तो उन परम पुरुषोंको ही मयस्सर है कि जो तृणवत् इस

संसारको त्यागकर सच्चे स्वाधीन अतीन्द्रिय सुखोंका अनुभव कर रहे है। यथार्थमें वे ही धन्य हैं! नौकर भी इस प्रकार पराधीनताकी निंदा करते हुए कुमारको ले चले।

जब मृत्यु क्षेत्रमें लेजाकर उन्होंने स्वामीके ऊपर शस्त्र-प्रहार किया, तब स्वामीने वज्रदण्डसे, जो इनके करमें था अपना बचाव कर, उसीसे फिर उन्हें लौटकर मारा। दश वीस सुभट तो यहाँ वहाँ गेंदकी तरह लुढक गये। फिर तो क्या था! स्वामीने मानों सिंहरूप ही धारण कर लिया हो, इस प्रकार लड़ने लगे। इस कारण संपूर्ण सैना स्वामीके ऊपर एकदम टूट पड़ी, सो कितने ही तो कुमारके मुष्टिप्रहारसे ही प्राणत्याग कर गये, कितनेक घायल हुए, कितने ही भागकर पीछे रत्नचूलके पास गये और कहने लगे कि यह रही आपकी नौकरी, जीते बचेंगे तो बहुत कमा खॉयगे, इस प्रकार कोई कुछ और कोई कुछ कहते थे। तात्पर्य कि बातकी बातमें स्वामीने आठ हजार सैनाको तितर बितर कर दिया।

तब राजा रत्नचूल, स्वामीका अतुल पराक्रम और अपनी सेनाकी दुर्दशा देखकर स्वयं स्वामीके सन्मुख आया। उधरसे गगनगति विद्याधर जो स्वामीको ले आया था, आ गया और अपना विमान स्वामीको दे दिया तथा और कितने ही दिव्य शस्त्र लाकर दिये। दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा। एक तरफ तो स्वामी अकेले और दूसरी तरफ सब सैन्यसहित राजा रत्नचूल लड़ने लगे।

यह कौतुक राजा मृगांकके दूतोंने, जो गढ़के उपरसे देख रहे थे जाकर सब हाल मृगांकसे कहा—

"हे राजन्! नहीं मालूम एक कौन अतिबलधारी पुरुष, जो देवोंसे भी न जीता जाय, महारूपवान, तेजस्वी, अल्पवयस्क सुभट कहाँसे आया है, जो राजा रत्नचूलकी आठ हजार सेनाको तहस नहस कर उसके सामने लड़ रहा है। एक ओर तो वह वीर अकेला है, और दूसरी ओर रत्नचूल अपने सम्पूर्ण सैन्यसहित है। क्या जाने यह अनीति देख कोई देव ही आया है, या राजा श्रेणिकने सहायतार्थ किसीको भेजा है!"

यह समाचार सुनकर राजा मृगांकने भी शीघ्र ही अपने सैन्य सहित युद्ध क्षेत्रको प्रयाण किया और देखते ही आश्चर्यवंत होकर स्वामीसे प्रार्थना की—"हे नाथ! आप तो रत्नचूलका सामना करें और सैन्यको मैं देखता हूं" यहाँ रत्नचूलने मृगांककी सेना आते देखी, सो विस्मयवान् हो पूछा—"अरे मंत्री! यह किसकी सेना आरही है?" मंत्रीने उत्तर दिया—"महाराज! यह राजा मृगांक सहाय पाकर सैन्य सहित आ रहा है।"

इसके पश्चात् सेना परस्पर बड़े आवेगसे भिड़ गई और घमसान युद्ध होने लगा। हाथीसे हाथी, घोड़ेसे घोड़े, प्यादेसे प्यादे लड़ने लगे, रथोंसे रथ जुटने लगे, वीरोंको जोश बढ़ने लगा और कायरोंके हृदय फटने लगे। इस प्रकार नीतिपूर्वक युद्ध होने लगा। स्वामी भी रत्नचूलके सम्मुख युद्ध करने लगे। सो थोड़ी देरमें रत्नचूलका रथ तोड़ भूमिपर गिरा दिया और ज्यों ही रत्नचूल उठ कर दूसरे रथपर चढ़नेवाले थे कि स्वामीने आकर जोरसे मुष्टि-प्रहार किया जिससे वह 'अररर' कर भूमिपर गिर गया। तब कुमारने उसकी छातीपर लात देकर दोनों हाथ बाँधकर

रत्नचूलको खड़ा किया। बस, फिर क्या था! रत्नचूलको बँधा देख उसकी सब सेना इधर उधर भागने लगी। स्वामीने सबको दिलाशा देकर शांत किया और अभयवचन क.े।

जब राजा मृगांकने ये जीतके समाचार सुने, तो उन्होंने तुरंत ही आकर स्वामीको नमस्कार कर विनयपूर्वक कहा–"हे नाथ! आपके ही प्रसादसे आज मेरी यह विपत्ति दूर हुई। आज मेरा आपके ही प्रतापसे शुभ उदय हुआ। धन्य है आपका साहस और पराक्रम!" इस प्रकार राजा स्तुति करने लगे और 'जय जय' ध्वनि चारों तरफ होने लगी। दुंदुभि बाजे बजने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी। यहाँ तो यह खुशी हो रही थी, वहाँ स्वामी कुछ और ही विचार कर रहे थे, कि हाय! हाय! जब एक ही जीवके मारने का बहुत पाप है, फिर तो मैंने आज अगणित जीव मार डाले।

वहाँपर विद्याधर इनकी प्रशंसा कर रहे थे। इतनेमें गगनगति रत्नचूलकी ओर इंगित करके बोले–"देखो, आज मृगांकने तुमको जीत लिया कि नहीं?" यह सुनकर ही रत्नचूलको क्रोध आया और बोला–

"राव मृगांक स्याल सम, मै गज सम तस अग्र।
सिंहरूप स्वामी भये, जीते सुभट समग्र॥"

तब मृगांक कोप कर कहने लगा–मनमें कुछ रह गई हो तो अब सही, आ जाओ। तब रत्नचूल स्वामीसे प्रार्थना कर कहने लगा–"नाथ! कृपा कर थोड़ी देरके लिये मुझे छोड़ दीजिये, इसे अभी इसका मजा चखा दूँ? यह सुन स्वामीने उसे छोड़ दिया। फिर उन दोनोंमें पुन युद्ध हुआ। अंतमें रत्नचूलने नागपाँस डाल राजा मृगांकको बाँध लिया और घरको लेजाने लगा।

यह हाल देखकर स्वामी बोले-"अरे दुष्ट ! तू मेरे देखते हुए इसे कहाँ लिये जाता है ? छोड़ छोड़ और जो अपनी कुशलता चाहे तो मृगांकको नमस्कार कर ।" यह सुनकर रत्नचूल अपने पूर्व बंधनकी सुध भूल क्रोधित हो स्वामीके सम्मुख युद्धके लिये आया । ठीक है—

"होनहार मिटती नहीं, लाख करो किन कोय ।
कर्म उदय आवे जिसो, तैसी बुद्धी होय ॥"

इससे पुनः घोर संग्राम होने लगा । निदान थोडी देरहीमें स्वामीने रत्नचूलको फिरसे बाँध लिया, तब पुष्पवृष्टि होने लगी, देवदुंदुभि बाजे बजने लगे । मृगांककी सेनामें हर्ष और रत्नचूलकी सेनामें शोक फैल गया । स्वामीने राजा रत्नचूलकी भागती हुई भयभीत सेनाको ढाढस दिया ।

पश्चात् राजा मृगांकने स्वामी सहित हाथीपर आरूढ होकर नगरमें प्रवेश किया । उस समय राजा मृगांक स्वामीके ऊपर छत्र किये और चमर ढोरते हुए चले आते थे । नगर अच्छी तरह सजाया गया था और घरोंघर आनंद बधाई हुई । इस समयकी शोभाका वर्णन नहीं हो सकता है । नारियोंके समूहके समूह जहाँ तहां मंगल कलश लिये खड़े थे । एक तो जीतका हर्ष और दूसरे स्वामीके अपूर्व दर्शनका लाभ, फिर भला खुशीका क्या पार था ! लोग अपने अपने भाग्यकी सराहना करते थे—" अहो धन्य भाग्य ! आज हमें ऐसे महान् पुरुषका दर्शन हुआ । अहा धन्य है इनकी माता ! जिसने ऐसा तेजस्वी पुत्र पैदा किया और धन्य हैं इनके पिता ! जिनने इन्हें लाड़ प्यारसे पाला । धन्य हैं वे गुरु ! जिनने यह अपूर्व

विद्या सिखाई। धन्य है वह भूमि जहाँ ये पग रखते हैं। वे वस्त्राभूषण पवित्र होगये, जिन्हें स्वामीने पहिर लिये। वे नदी-नाले धन्य हैं, जहाँ स्वामी जलक्रीडा करते है।"

इस प्रकार नगरके नर नारी सराहना करते, और आशीर्वाद देकर स्वामीके ऊपर पुष्पवर्षा करते थे। इस प्रकार स्वामी नगर-जनोंको हर्षायमान करते और उनके द्वारा सन्मान पाते तथा सबको यथोचित पुरस्कार देते हुए चले जा रहे थे, मानों देवोंके मध्य इन्द्र ही जा रहा है।

इनके अनुपम रूपको देखकर नर नारी अत्यन्त विह्वल हो जातीं। कोई स्त्री वालकको दूध प्याती थीं सो स्वामीके आनेकी खबर सुन एकदम दौड़ पड़ी, वालक पृथ्वीपर जा पड़ा, उसकी उनको कुछ भी सुध न रही। कितनी अंजन दे रहीं थीं, सो एक ही आँखमें आँजने पाई थी, कि सवारीकी आवाज सुनकर अंजनकी डिब्बी हाथमें लिये और एक अंगुलीमें श्याम अंजन लगाये यों ही दौड़ आई। कोई पतिको परोश रही थीं सो हाथमें करछी लिये हुए ही दरवाजेसे वाहिर चली आई। कोई वस्त्र बदल रही थी सो आधा वस्त्र पहिरे उसे सँभालती हुई आगई। कोई घर बुहार रही थीं सो बुहारी लिये ही चली आई। कोई पानी भरने जा रही थीं सो रास्तेमें ही अटक रही। जो पानी भर रही थीं, सो कुएमें घड़ा डाले हुए यों ही खड़ी रह गई। जो पुरुष दूकानोंमें बैठे हुए रोकड़ गिन रहे थे, सो स्वामीको देख एकदम उठकर खड़े हो गये-सब रोकड़ बिखर गई, पर उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं रहा। जो तोल रहे थे सो ऐसे विह्वल हो गये कि आटेके बदले बाँट ग्राहकोंके

पलंगमें डालने लगे और कुछका कुछ तोल देने लगे। तात्पर्य कि उस समय नर नारियोंका कुछ विचित्र हाल था। कोई कहता देव है तो कोई कहता कामदेव है, ऐसी हालत हो रही थी।

जब कुमार राजभवनके निकट पहुँचे, तो रत्नचूलको छोड़दिया और उत्तम वस्त्राभूषण पहिनाकर बोले—"राजन्! मुझे क्षमा करो, मैंने आकर यहाँ आप लोगोंको बहुत दुःख दिया।" स्वामीकी यह बात सुनकर रत्नचूल विनय सहित कहने लगा—'नाथ! आप तो क्षमाधर हैं, कहाँ तक प्रशंसा करूँ? मेरा धन्य भाग्य है, जो आप जैसे पुरुषोत्तमके दर्शन मुझ भाग्यहीनको हुए? आपके प्रभावसे मैं दुराचारसे बच गया। बहुत क्या कहूँ! आप ही मुझे कुगतिमें गिरनेसे रोकनेवाले है। इसलिये नाथ! अब मुझे विशेष लज्जित न कीजिये।" रत्नचूलके ऐसे दीन वचन सुनकर स्वामीने मिष्ट शब्दोंमें उसे सन्तोष दिया। राजा मृगांककी रानी स्वामीके आगमनके शुभ समाचार सुनकर मंगल कलश ले सन्मुख आई और राजा मृगांककी पुत्री मंजुल वस्त्राभूषणों सहित आकर कुँवरके ऊपरसे निछरावल करने लगी। इस तरह जब स्वामी रनवासमें पधारे, तब रानीने दही अँगुरीमें लेकर स्वामीको तिलक किया और गद्गद होकर स्तुति करने लगी—"हे नाथ! मेरा यह सुहाग आज तुम्हींने बचाया है। आपहीके प्रतापसे पतिके पुनः दर्शन हुए हैं, आपके जैसा हितैषी हमारा और कोई भी नहीं है। धन्य है आपकी परोपकारता और साहसको कि स्वदेश छोड़कर यहाँ पधारे"। इस प्रकार बहुत ही उपकार माना। स्वामीने भी यथायोग्य मिष्टवचनोंसे उत्तर दिया। पश्चात् षट्रसयुत विविध प्रकारके भोजन तैयार

किये गये, सो स्वामी जीमकर शयनागारमें शयन करने चले गये।

इस प्रकार एक दिन राजा मृगांकके यहाँ वे रहे, फिर दूसरे दिन कहने लगे–"मेरी इच्छा है कि अब मै राजगृही जाऊँ" स्वामीके ऐसे वचन किसको अच्छे लगते ? वे सब हाथ जोडकर बोले—"हे नाथ! आप कुछ दिन तो और हम दोनोंके यहाँ ठहरें। आपके रहनेसे हम लोगोंको परम शांति मिलती है। पश्चात् आपकी इच्छाप्रमाण जो आज्ञा होगी सो ही करेंगे। हाँ! आज एक दूतके द्वारा सब कुशल समाचार राजगृही भेज देते हैं, ताकि आपके माता पिता और राजा प्रजा सबको शांति मिले।"

स्वामीने यह बात स्वीकार की। राजा मृगांकने तुरंत सुबुद्ध नाम दूतको बुलाकर कहा–"दूत! तुम राजगृही जाओ और वहाँके राजा श्रेणिक तथा स्वामीके पिता अर्हद्दास श्रेष्ठी और माता जिनमतीसे यहाँके सब कुशल समाचार कहो और कहना कि दश दिन पीछे स्वामी भी पधारेंगे" यह कहकर उनके योग्य स्वशक्ति प्रमाण भेंट वस्त्राभूषण आदि भी भेजे।

राजा रत्नचूल यह सुनकर बोले–"हे राजन्! जैसी आपकी सुता, वैसी ही यह अब मेरी भी सुता है सो मेरे और आपके यहाँ जो जो सार वस्तुएँ हों सो सब उन्हींकी है। ऐसा दोनों राजाओंने विचार कर बहुतसे विद्याधर सेवकोंको बुलवाया और उनके हाथ बहुतसी संपत्ति देकर विदा किया। वे विद्याधर स्वामीकी आज्ञा पाकर शीघ्र ही हवाकी तरह आकाश मार्गसे एक क्षण मात्रमें राजगृही आ गये, और राजा श्रेणिकके सम्मुख नमस्कार कर अल्प भेंट जो लाये थे सो अर्पण करके केवलपुरकी जीत और स्वा-

मीके आगमनके समाचार कह सुनाये। राजा यह सुनकर अतिप्रसन्न हुए और तुरंत ही ये समाचार और वह भेटकी सामग्री श्रेष्ठी अर्हद्दासके पास भेजा। सेठ और सेठानी अति ही प्रसन्न हो उन आगन्तुक विद्याधरोंसे पूछने लगे कि—'आप लोगोंने हमको कैसे पहिचान लिया ?'

"तब नभचर कर जोर कर; कही सुनो हम बात।
विश्व-विभूषण तुम तनय; जगत भये विख्यात ॥"

ठीक ही है- सूर्यके ऊपर चाहे हजारों ही बादल क्यों न आ जायँ तथापि उसे लोप नहीं कर सकते है। हे मातापिताजी! आपके पुत्र, कुल नहीं, देश नहीं, परंतु विश्वके भूषण हैं, फिर भला, आपको कौन न पहिचानेगा ? जिस दिशासे सूर्यका उदय होता है, उसे ऐसा कौन अज्ञान होगा जो न जाने? अर्थात् सब ही जानते हैं।

यह वार्ता सुनकर सब पुरजन तथा वे चारों सेठ, जिन्होंने स्वामीको अपनी कन्या देना स्वीकार किया था सो बहुत आनन्दित हुए और सब लोग कुमारके आनेकी घड़ी घडी गिनने लगे कि कब हम लोग स्वामीका दर्शन करें ? समय तो अरोक चला ही जाता है। केरलपुरमें तो दश दिन दश घड़ीके समान निकल गये परंतु राजगृहीमें दश दिन दश वर्षसे भी अधिक प्रतीत हुए और बड़ी कठिनतासे पूरे हुए। सो ठीक है—

" जात न जाना जात है; सुखमें सागर काल।
एक पलक भी ना कटे; दुःख वियोगमें हाल ॥
दिवस नगर राजगृही; अरु केरलपुर माँहि।

उतके जात न जान ही; यहाँ सु बीतत नाँहि ॥
वस्तु जगत सब एकसी; कही गुरू बतलाय ।
राग द्वेष वश लख परे; भली बुरी अधिकाय ॥ ”

इस प्रकार कुछ दिन रहकर एक दिन स्वामीके मनमें संसारके चरित्रसे अत्यन्त उदासीनता हुई, जिससे उन्हें सब वस्तुएँ आडंबर रूप दिखाई देने लगीं। सो वे यह विचार कर कि अब नियत दिन पूरे हो गये, अब शीघ्र ही घर पहुँचकर इच्छित कार्य करूँगा–जिनदीक्षा धरूँगा, जानेका विचार कर रहे थे। वहाँ विद्याधर यह विचार कर कि यदि स्वामी कुछ दिन और निवास करें तो अच्छा हो, अनेक प्रकार राग रंग करते थे ताकि दिनोंकी गिनती ही याद न आवे। ठीक है—

“ अपनी अपनी गरज़को; इस जगमें नर सोय ।
कहा कहा करता नहीं; गरज़ बावरी होय ॥ ”

परन्तु स्वामी कब भूलनेवाले थे? उनकी तो अवस्था ही और हो रही थी।

“ स्वामी मन वैराग्य अति; नभचर मन बहु रंग ।
अवसर बना विचित्र यह; केर बेरको संग ॥ ”

उनको तो ये सब रागरंग हलाहल विष और तीक्ष्ण शस्त्रसे भी भयंकर दीख रहे थे सो उन्होंने राजा मृगांकको बुलाकर कहा कि आपके कथनानुसार अवधि पूर्ण हो गई, अब हमको विदा कीजिये और रत्नचूलसे कहा कि आप भी अब अपने नगरको पधारें और प्रजाके सुख दुखकी खबर लें तथा मुझपर क्षमा करें। ये वचन सुनकर दोनों राजा कहने लगे–

" आज्ञा सुनत कुमारकी; बोले द्वय खगनाथ।
राजगृही तक हम उभय; चालि हैं तुम्हरे साथ ॥"

तब स्वामीने कहा—जो चलना है तो अब विलंब न कीजिये शीघ्र ही चलना चाहिये, क्योंकि समय अनमोल है। जाते हुए जाना नहीं जाता और गया हुआ फिर पीछे नहीं मिलता है इसलिये उत्तम पुरुषोंको चाहिये कि जो कुछ कार्य करना हो, शीघ्र ही कर लिया करें।

स्वामीकी आज्ञाप्रमाण वे दोनों विद्याधर राजा अपने अपने रनवास सहित योग्य भेंट तथा पुत्रीको साथ लेकर आकाश मार्गसे क्षणभरमें राजगृही आये। राजा श्रेणिक तथा पुरजन लोग स्वामीका आगमन सुनकर अगवानीको आये और सबने परस्पर भेंट मिलाप किया। परस्पर 'जुहारु' कहके कुशल समाचार पूछे। सबने मिलकर नगरमें प्रवेश किया। अहा—

"निरखत कुँवर सबहि हर्षाये, मनहु अंध फिर लोचन पाये।"

सबसे पहिले वे राजमहलमें आये, तो राजा श्रेणिकने उनको अर्द्ध सिंहासनपर बैठाया तथा और सबको भी यथायोग्य स्थान दे सन्मानित किया, कुशलक्षेम पूँछी, बाद राजा स्वामीकी नम्र वचनोंसे स्तुति करने लगे—

"हे कुमार! आपके प्रसादसे हमको अलभ्य वस्तुकी प्राप्ति हुई। धन्य है आपको कि जो कार्य अगम्य था उसे भी आपने सुगम कर दिया।" तब स्वामीने भी शिष्टाचार पूर्वक यथोचित उत्तर दिया और फिर राजासे सब खगराजाओंका, जो आये थे, परिचय कराया। सभी परस्पर 'जुहारु' कहके प्रीति सहित मिले,

और स्वामीका उपकार मानने लगे कि आपहीके प्रभावसे हम सब मिले हैं, इत्यादि प्रशंसा योग्य वचन कहे। फिर राजा श्रेणिकका व्याह राजा मृगांककी पुत्रीके साथ बहुत ही आनन्दसे हुआ। स्वामी उदासीनरूपसे घरमें रहने लगे और अवसर विचारने लगे कि कब वह समय आवे जब कि मैं जिनदीक्षा लेकर इस संसारके झगड़ेको मिटाऊँ। कुछ दिन तक सब लोग रहे और फिर आज्ञा लेकर अपने २ निवासस्थानोंको पधार गये। राजा श्रेणिक भी निःशंक होकर सुखसे काल व्यतीत करने लगे।

इस प्रकार कुछ दिन बीते। एक दिन राजा सभामें बैठे थे कि वनपालने आकर विनती की—

"हे नाथ! इस नगरके समीप एक महामुनिनाथ पधारे हैं, जिससे वनकी शोभा अतिशय हो रही है। सर्प और नौला, मूसा और बिलाव, सिंह और अजा आदि जातिविरोधी जीव भी परस्पर मैत्री भावसे निकट बैठे हैं।" यह समाचार सुन राजाने वनपालको बहुत द्रव्य देकर संतोषित किया और सब पुरजन सहित कुमारको लेकर मुनिकी वंदनाको चले। जब निकट पहुँचे, तब वाहनसे उतरकर पाँव प्यादे सन्मुख जाकर साष्टांग नमस्कार किया। मुनिने 'धर्मवृद्धि' दी और सबको धर्मका स्वरूप समझाया तब स्वामीने गुरुकी स्तुतिकर नम्रीभूत हो पूछा—" हे नाथ! मेरे भवांतर कहो।"

सो वे अवधिज्ञानी मुनि जम्बूस्वामीके भवांतर कहने लगे। स्वामीको भवांतर सुनकर अत्यन्त वैराग्य हुआ। ठीक है—

" पहिलेहिसे जो विरक्त थे, तापर सुन अवसार।
फेर धर्म उपदेश सुन, अब को रोकनहार ? ॥ "

स्वामी तुरंत ही कहने लगे—

" हे नाथ ! मैंने इस थोड़ेसे ही जीवनमें घोर कर्मोंका बंध किया है। यथार्थमें यह संसार मरुस्थिल समान असार है और आप कल्पवृक्षके समान सुखदाता हैं, अनादि कालसे मोहनींदमें सोये हुए जीवोंको जगानेवाले हैं, सच्चे करुणासागर हैं। मुझे अपना सेवक बनाइये और दीक्षा देकर पार उतारिये। "

स्वामीके ऐसे वचन सुनकर मुनिवर बोले—"वत्स ! अभी तुम घर जाओ, पीछे आना, तब तुम्हें दीक्षा देंगे।" गुरुके ये वचन सुनकर राजा हर्षित हुए, और सराहना करने लगे—

" धन्य धन्य गुरु राय तुम, सबहीको सुख देन।
परमविवेकी समय लख, कहे उचित ये वैन ॥ "

और उठकर गुरुको नमस्कार किया, विदा हुए और स्वामीका हाथ पकड़कर साथ ही रथमें बैठाकर नगरको ले चले। यद्यपि स्वामीको नगरमें जाना अच्छा नहीं लगता था परंतु गुरुजनोंकी आज्ञा लोपना भी ऊचित नहीं है, ऐसा समझकर नगरको ओर प्रयाण किया। ठीक है—

" चाहे मन भावे नहीं, तउ गुरुजनकी सीख।
कबहुं भूल नहिं लोपिये, लोपें मांगे भीख ॥ "

स्वामीको घर आये देख माता पिता बहुत सुखी हुए, और स्नेहपूर्वक कहने लगे—"पुत्र ! उठो, महलोंमें पधारो, ये भोगोपभोगकी सामग्रियाँ तैयार हैं सो भोगो, तथा हम लोगोंके नेत्रोंको

तृप्त करो। आपको आनंदित देखकर ही हम लोगोंको आनन्द होता है। सो ठीक है—

"क्रीडा करत बाल लख सोई, मातु पिता मन अतिसुख होई।"

तब संसारसे पराङमुख स्वामी अपने माता पिताके इन स्नेह-युक्त वचनोंको सुनकर बोले—"हे पिता! ये इन्द्रियभोग तो हमनें अनादि कालसे भोगे हैं। जब हम इंद्रादिके विभवको भी भोगकर तृप्त नहीं हुए, तब इस क्षुद्र आयुवाले मनुष्य भवमें क्या तृप्त होंगे? इसमें तो वह अपूर्व काम करना चाहिये जो कि न तिर्यंच, न नारकी और न देव ही कर सकते है। इन्द्रिय विषय तो चारों ही गतियोंमें प्राप्त हो सकते है, परंतु अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्तिका साधन सिवाय इस मनुष्य पर्यायके अन्य किसी भी पर्यायमें नहीं हो सकता है। इसलिये हे पिता! अब मुझे शीघ्र ही उस अखंड, अविनाशी, चिरस्थायी, सच्चा, आत्मिक सुख प्राप्त करनेकी (जिन दीक्षा लेनेकी) आज्ञा दीजिये, क्योंकि प्रथम तो इस कालमें आयु ही बहुत थोड़ी है, और उसमेंसे भी बहुतसा भाग चला गया है और शेष भी पल घड़ी दिन पक्ष ऋतु करके निकलता चला जा रहा है। और गया हुआ समय फिर नहीं आता है इसालिये अब विलम्ब करना उचित नहीं है। आज्ञा दीजिये, मै आज ही दीक्षा लूंगा।"

यद्यपि स्वामीके ये वचन अत्यन्त हितरूप थे और स्वामीको तो क्या संसारी जीवोंको संसारके बंधनसे निकालनेवाले थे, परंतु मोहवश ये माता पिताके हृदयमें तीरका काम कर गये। सो ठीक है—

"लख न परत हित अनहित कोई, जाके उदय मोह अति होई॥"

वे स्वामीसे कहने लगे—"पुत्र! ऐसे वचन क्यों कह रहे हो? जैसे अंधेको लकड़ीका सहारा होता है, वैसे ही हम लोगोंको आपका सहारा है। यह बाल्य अवस्था है। अभी आपका शरीर तप करने योग्य नहीं है। कुछ दिन भोग करके पश्चात् योग लीजिये। यद्यपि स्वजन और पुरजन जो लोग इस खबरको सुनकर आये थे, सो सभी नाना प्रकारसे स्वामीको समझाने और विषयोंमें फँसानेकी चेष्टा करते थे तथापि कुमारके चित्तपर कोई कुछ भी असर नहीं डाल सकता था। ठीक है—

"अनुभवके अभ्याससे, रच्यो जो आतम रंग।
कहु ताको त्रैलोकमें, कौन कर सके भंग!"

अब अर्हद्दास सेठने देखा कि स्वामी किसी प्रकार भी नहीं मानते, तब उन्होंने उन चारों सेठोंको, जो अपनी कन्यायें स्वामीको व्याहना चाहते थे, ये समाचार भेजे। उन लोगोंने ये समाचार सुनकर और अत्यन्त व्याकुल होकर अपनी २ पुत्रियोंको बुलाकर कहा—'ए पुत्रियो! जंबूकुमार तो विरक्त हुए हैं और आज ही दीक्षा लेना चाहते हैं इसलिये अब जो हुआ सो हुआ, हम लोग तुम्हारे लिये और कोई उत्तम रूपवान् वर सोध लावेंगे।" तब वे कन्यायें अपने पिताओंके इस कुत्सित वाक्यको सुनकर बोलीं—पिता!

"इस भवमें हमरे पती, होंगे जंबूस्वामि।
और सकल नर आप सम, मानो वच अभिराम।"

इसलिये अब आप पुनः ये वचन मुँहसे न बोलें। बड़े पुरुषोंकी कुलीन कन्यायें इन शब्दोंको सुन नहीं सकती हैं। प्राण जानेसे भी अत्यन्त दुःखदायक, घृणित, लज्जाजनक ये अप-

शब्द, हे पिताजी! आपको कहना उचित नहीं है। क्या कुलवती कन्यायें कभी स्वप्नमें भी ऐसा कर सक्ती हैं कि एक पुरुषके साथ जब उनका सम्बन्ध निश्चित होगया हो और जब उन्होंने उसे अपने मनसे व्याहनेका संकल्प कर लिया हो, तो फिर वे किसी दूसरेसे अपने पुनर्विवाह संबन्धकी बातको भी कानसे सुनें? क्या आपने राजमती आदि सतियोंका चरित्र नहीं सुना है? इसलिये और कल्पनाको छोड़ दीजिये और इसी समय जम्बूस्वामीके पास जाकर उनसे ये वचन ले आइये कि आप आज तो हमारी कन्याओंसे व्याह करें और कल प्रातःकाल दीक्षा ले लें। इसीमें हम लोग अपने २ कर्मकी परीक्षा करेंगी। जो हमारे उदयमें सुख या दुःख आनेवाला है उसे कौन रोक सकता है? बस, अब यही अंतिम उपाय है! आप जायें, देर न करें।

यद्यपि ये सेठ लोग कन्याओंके इस कथनसे संतुष्ट नहीं थे, परंतु करें ही क्या? कुछ वश नहीं रहा। वे निरुत्तर हो स्वामीके पास आये और आद्योपांत सब वृत्तांत कहकर विनती की—' हे नाथ! अब हम लोगोंको यही भिक्षा मिलना चाहिये कि आज तो हमारी कन्याओंको व्याहिये और आप प्रभात दीक्षा लीजिये। स्वामीको यद्यपि क्षण क्षण भारी हो रहा था, तथापि सेठोंको अत्यन्त नम्र और दुःखित देख स्वामीने ऐसा करना कबूल किया और उसी समय बरात लेकर व्याहको चले। सो उन कन्याओंको व्याह कर शामके पहिले ही विदा कराकर लौट आये। गृहव्यवहार जो थे, सो हुए। जब एक पहर रात्रि बीत गई तब दासीने सेज्या (बिछौना) तैयार की और स्वामी भी यथायोग्य स्वजनोंसे विदा लेकर पलँगपर जा लेटे।

चारों स्त्रियाँ भी सलाह कर वहाँ गईं और अपनी २ चतुराईसे स्वामीका मन चंचल करने और स्त्रीचरित्र फैलाने लगीं।

सो चारोंमेंसे प्रथम ही पद्मश्रीने अपना जाल फैलाना आरम्भ किया। वह कहने लगी—"ए प्रीतम! जो आप मेरे कहनेको न मानोगे तो मैं अपनी सखियोंमें इस तरह कहूँगी कि मेरा पति महामूर्ख है। मेरी तरफ देखता ही नहीं है। वह शृंगाररसको बिलकुल नहीं जानता है, न हास्यरस ही उसमें है। कला चतुराई तो समझता ही नहीं है, और कोकशास्त्रका तो नाम ही उसने नहीं सुना है। नायकाभेद तो बेचारा क्या समझे? अरी बहनो! उठो, इनके मनःकी सही। तप कर लो, चलो जल्दीसे, जिसमें स्वर्ग मिल जाय। देखो तो इनकी बुद्धि कहाँ गई है कि सरोवर (इन्द्रिय विषय) का छोड़कर ओसकी बूँद (स्वर्ग) की आशा करते हैं। भला, जो गोदको छोड़कर गर्भकी आस करे, उसके सिवाय और मूर्ख कैसा होता है?

तब तीनों बोलीं—"बहिन! तू कहे जैसा।" तब पुनः पद्मश्री कहने लगी—"किसी ग्राममें एक कृषिक काछी रहता था, सो उसके घर एक कमाऊ पुत्र और स्त्री थी। काल पाकर स्त्री मर गई। तब उस काछीने और व्याह किया। जब वह नई काछिन आई, तो पतिसे प्रसन्न न हुई। पतिने कारण पूछा, तो कहा कि—"तुम अपने लड़केको मार डालो तो मैं प्रसन्न होऊँगी क्योंकि जब मेरे उदरसे बालक होगा तब यह उसे दासके समान समझेगा और बहुत दुःख देगा, इत्यादि।"

तब काछीने कहा—"प्यारी ! जो उसे मैं मारूं, तो राजा दंड दे, स्वजन और जातिके पंच मुझे बाहर कर दें, इसलिये यह अधम कार्य मैं कैसे करूं ?"

तब स्त्री बोली—"मैं तुमको उपाय बताती हूं सो करो कि सवेरे आप दो हल लेकर खेतमें जाना और उनमेंसे एक हल पुत्रको दे कर आगे कर देना और मरखाहा बैल अपने हलमें लगा कर आप पीछे पीछे हल चलाना और आँख बचाकर बैलको ढीला कर देना सो वह जा कर उसे सींग मार देगा। बस, पीछेसे आप उसे मारने लगना और चिल्ला देना, कि दौड़ियो २ बैलने मेरे लड़केको मार डाला। इस प्रकार कार्य हो जायगा और कोई न जान सकेगा।

तब वह कामांध काछी इस बातपर राजी हुआ, परंतु यह सब बात किसी तरह उसके पुत्रने सुन ली। जब सवेरा हुआ तो काछीने लड़केको आज्ञा दी कि हल लेकर खेत जोतने चल। लड़केने वैसा हीं किया। जब वह हल लेकर खेतमें गया तो धानका जो फूला फला हुआ खेत था उसीमें वह हल फेरने लगा। इतनेमें काछी आया और क्रोध कर कहने लगा—'अरे मूर्ख ! तूने यह क्या किया कि चार महीनेकी कमाई खो दी। लड़का बोला—' पिताजी ! इसमें क्या धान होगा ? अब जोत कर गेहूँ चना बोवेंगे, सो वैशाखमें खाना। "

तब काछी बोला—'बेटा ! तू अत्यन्त मूर्ख है। हालका पका हुआ खेत तो मट्टीमें मिलाता है और आगेकी आशा करता है। आगे क्या जाने क्या हो ?' यह सुन बेटा बोला—"

पिताजी ! ठीक है, फिर मुझे मार कर आपको पुत्र होगा या नहीं, या कैसा होगा, इसका आपने क्या भरोसा कर लिया है?" यह सुन काछी लज्जित हुआ और दोनों मिलकर घर गये इसलिये स्वामिन् ! प्रसन्न होओ । क्यों हँसी कराते हो ?

इस प्रकार पद्मश्री जब अपनी चतुराई कर चुकी, तब स्वामीने कहा—"ए सुन्दरी ! सुनो, महा नदीके तटपर कोई हाथी मरा पड़ा था। उसे बहुतसे कौए नोच २ कर खा रहे थे। अचानक लहर आनेसे वह मृतक कलेवर पानीपर बहने लगा सो बहुतसे कौए तो उड़ गये परंतु एक अतिशय लोभी कौआ उसे खाता हुआ उसीके साथ बहने लगा। इसी प्रकार वह दश बारह कोस तक निकल गया इतनेमें एक बड़ा मगर निकला और उस कलेवरको निगल गया। तब वह लोभी कौआ उड़ा और चाहा कि कहीं निकल जाऊँ, पर जावे कहाँ ? चारों ओर तो पानी ही पानी भर रहा था। वह बहुत इधर उधर भटका पर कहीं जा न सका। निदान लाचार हो उसी नदीके प्रवाहमें गिरकर वह बह गया। सो यदि वह कौआ अधिक लोभ न करके दूसरे कौओंके समान उड़ गया होता तो इस तरह प्राण क्यों खोता ?

"वायस जो तृष्णा करी, बूड़ो सागर मांह।
मो बूड़तको काढ़ि है, सो तुम देहु बताय ॥"

यह कथा सुन पद्मश्री निरुत्तर हुई । तब कनकश्री-दूसरी स्त्री कहने लगी—"हे नाथ ! सुनो, एक पहाड़पर कोई बन्दर रहता था सो एक समय अचानक पाँव चूक जानेसे नीचे पत्थरपर गिरकर मर गया और कर्मसंयोगसे विद्याधर हुआ। एक दिन उसने मुनिके

पास जाकर अपने भवांतर पूछे। मुनिने उसके पूर्वभवका वृत्तांत कह दिया जिसे सुनकर वह विद्याधर घर गया और स्त्रीसे सब हाल सुनाकर कहने लगा कि मैं एक वार पहाड़परसे गिरा सो बंदरसे मनुष्य हुआ और अब जो गिरूंगा तो देव होऊंगा। स्त्रीने बहुत समझाया, पर वह मूर्ख न समझा और हठ कर पर्वतसे गिर पड़ा।

"खग हठकर गिरिसे गिरा, बन्दर हुआ निदान।
त्यों स्वामी हठ करत हो, आगे दुःख निदान॥"

"हे नाथ! हठ भली नहीं है, प्रसन्न होओ!"

तब स्वामी बोले—"सुनो! विंध्याचल पर्वतपर एक बन्दर रहता था वह बड़ा कामी था सो अपने सब साथियोंको मारकर अकेला विषयासक्त हो वनमें रहने लगा। जो कुछ सन्तान होती थी, उसे भी वह तुरत ही मार डालता था। एक वार किसी बन्दरीसे एक बन्दर उत्पन्न हो गया और उसकी खबर बूढे बन्दरको न होने पाई। निदान वह बन्दर जवान हुआ और यह कामी बन्दर बूढा हुआ और इसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई सो किसी समय वे दोनों बन्दर आपसमें लड़ गये। वह वृद्धबन्दर हार कर भागा और प्यास लगनेसे पानी पीनेको दल दलमें घुसा सो कीचमें फँसकर वहीं मर गया। सो ए सुन्दरी!—

"कपि तृष्णा कर भोगकी, पायो दुःख अकत्थ।
मैं चहुँ गति जब डूबि हों, काढ़न को समरत्थ॥"

यह कथा सुनकर जब कनकश्री निरुत्तर हुई, तब विनयश्री तीसरी स्त्री कहने लगी—"हे स्वामिन्! सुनिये, किसी ग्राममें एक लकड़हारा रहता था जिसने अतिशय परिश्रम करके

दिन दिनभर भूखा मरके एक अँगूठी बनवाई और उसे यह सोचकर जमीनमें गाड़ दी कि यह विपत्तिमें काम आयगी। एक दिनकी बात है कि कोई बटोही जिसके पास कुछ द्रव्य था, परदेश जाते समय ऐसे ही विचारसे अपना द्रव्य उसी जंगलमें गाढ़ कर चला गया। उसे इस लकड़हारेने देखकर खोदा तो बहुत द्रव्य मिला सो प्रसन्न होकर अपनी अँगूठी भी उसीके साथ गाड़ दी। उसे गाड़ते हुए किसी और ही बटोहीने देख लिया और वह द्रव्य वहाँसे उखाड़कर ले गया। जब लकड़हारा वहाँ आया तो भूमि खुदी हुई देखी और द्रव्य न पाया, सो हाय हाय करने और पछताने लगा कि वह लक्ष्मी गई सो गई परंतु मेरी गाँठकी अँगूठी भी साथ ले गई। सो ठीक है—

"जो नर बहु तृष्णा करे, चोरै परका वित्त।
सो खो बैठे आपनो, साथहि परके वित्त॥"

इस प्रकार हे स्वामिन्!

"परिपूरण धन होत भी, भोगे दुःख अपार।
तिस सम नाथ न कीजिये, करूँ विनय हितकार॥"

यह वार्ता सुनकर स्वामी बोले—"सुन्दरी! सुनो, किसी भयानक वनमें एक बटोही चला जा रहा था, उसे हाथीने देखा और वह उसके पीछे लगा सो भागते २ एक कुएके किनारे झाड़ देख उसकी जड पकड़ कर कुएमें लटक रहा। उस कुएके नीचे तलीमें एक अजगर मुँह खोले बैठा था। बगलमें चारों ओर चार साँप फण उठाये हुए फुसकारते थे। उसकी जड़को सफेद और

काले दो रंगके चूहे काट रहे थे। झाड़पर मधुमक्खियोंका छाता लग रहा था सो हाथीने आकर झाड़को हलाया और मक्खियाँ उड़ कर उस बटोहीके शरीरसे चिपट गईं। इतनेमें शहदकी एक बूंद उस बटोहीके मुँहमें पड़ गई, वह उसे बड़े प्रेमसे सब दुःख भूलकर चाटने लगा। इतनेमें एक विद्याधर आया और समझाकर कहने लगा-हे बन्धु! यदि तू कहे तो मैं तुझे इस दुःखकूपसे निकाल लूं। तब बटोही बोला-'मित्र! बात तो भली है, परन्तु एक बूंद और आ जाने दो फिर मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।' ऐसा कह वह फिर ऊपरको बूँदकी ओर देखने लगा। यहाँ विद्याधर भी अपने मार्ग चला गया। वहाँ चूहोंने जड़ काट डाली, इससे वह बटोही बातकी बातमें अजगरके मुखमें जा पड़ा। इसलिये ऐ सुन्दरी!

"पंथी इन्द्रिय विषय वश, अजगर मुख गयो सोय।
मैं जु पडूं भवकूपमें, तो काढ़ेगा कोय॥
भव वन, पंथी जीव, गज; काल, सर्प गति जान।
कुआ गोत्र, माखी स्वजन, आयू जड़ पहिचान॥
निगोद अजगर है महा, घोर दुःखकी खान।
विषय स्वाद मधु बूंद ज्यों, सेवत जीव अज्ञान॥
सम्यक् रत्नत्रय सहित, संवर करें निदान।
विनयश्री! इम जानियो, सोई पुरुष प्रधान॥"

यह कथा सुन विनयश्री निरुत्तर हुई तब चौथी स्त्री रूपश्री कहने लगी-'स्वामिन्! आपने हमारी तीनों बहिनोंको ठग लिया। अब मुझे ठगो तब आपकी चतुराई है। इस प्रकार गर्वयुक्त हो कहने लगी-'हे नाथ! सुनो एक वार जब बहुत पानी बरसा तो बिल वगैरः में

भी पानी भर गया सो एक बिलवासी जीव दुःखी होकर निकल भागा। उसे देखकर एक सांप पीछे लगा। जब वह जीव बिलमें घुसा, तो साथ ही वह सांप भी घुसा और जाते ही उस जीवको अपना भक्ष्य बनाया, परंतु इतनेसे उस सांपकी तृष्णा न मिटी, तब वह इधर उधर और जानवरोंकी खोज करने लगा कि अचानक वहां एक नौला मिल गया उसने सांपको पकड़ कर उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले; सो हे स्वामिन्!—

"नाग लोभ अतिशय कियो, खोये अपने प्राण।
तातें हठ स्वामी तजो, तुम हो दया निधान॥

तब स्वामी यह वार्ता सुन कहने लगे—"ए सुंदरी! किसी वनमें एक बहुत भूखा गीदड़ फिरता था। एक दिन वह उस नगरके समीप किसी मरे हुए बैलके सड़े कलेवरको देखकर भक्षण करने लगा। जब खाते२ सवेरा होगया और नगर के लोक सब बाहर निकले, तो भी वह लोभी गीदड़ तृष्णावश वहीं बैठा खाता रहा। नगरवासियोंने जब उसे वहां देखा तो उन्होंने तुरत जाकर उसे पकड़ लिया और किसीने उसकी पूंछ काट ली, किसीने कान काट लिये, किसीने दांत उखाड़ लिये और जब इन लोगोंने उसे छोड़ा तो कुत्तोंने उसका पीछा किया और चींथ२ कर उसे मार डाला। यदि वह गीदड़ अपनी भूखके अनुसार खा करके कहीं भाग गया होता और तृष्णा न करता तो अपने प्राण अवश्य बचा सकता था, सो ऐ सुन्दरी!

"जैसे वह गीदड़ मुवो, तृष्णावश निर्धार।
तैसे मुझ भव जलधिसे, कौन उतारे पार॥

इस प्रकार स्वामीको अपनी चार स्त्रियोंको निरुत्तर करते २ सवेरा होगया। सब लोग उठ२ कर अपने काममें लगने लगे। स्वामीकी माताको रातमें निद्रा नहीं आई। वे चितातुर बैठी थीं, इतनेमें दरवाजेके निकट एक चोरको खड़ा देखा। माताने पूछा—"ऐ भाई! तू कौन है और किस हेतु यहां आया है?"

तब चोर बोला—"हे माता! मै चोर हूं और आपके घरसे बहुत द्रव्य कई बार चुरा ले गया हूं। मेरा नाम विद्युतचर है। मैं राजपुत्र हू परन्तु बाल्यावस्थासे मुझमें चोरीकी कुटेव पड़ गई है इसलिये देश छोड़कर यहां आया हूं।"

तब माता अपना खजाना दिखाकर बोली—'हे भाई! ये सब धन सम्पत्ति रत्नराशि है, इसमेंसे जितना चाहे ले जा।" चोरने कहा—'ए माता! तू क्षणेक घरमें जाती है और क्षणेक आंगनमें आती है तथा इसतरह बिलकुल निष्पृह होकर द्रव्य के जानेकी आज्ञा देती है सो इसका क्या कारण है?"

तब माताने कहा—"भाई! अभी प्रातःकाल मेरा पुत्र दीक्षा ले जायगा और उसकी ये चारों स्त्रियां जो समझा रही हैं अभी कल ही व्याह कर आई है। पुत्र आज दीक्षा लेगा तब इस द्रव्यको कौन भोगेगा? सो तू भला आया। अब इसे तू ले जा, यह भाररूप ही है। मैं इसी चिंतामें बाहर जाती हूं और भीतर आती हू, कहीं भी चेन नहीं पड़ता है।"

चोर बोला—"माता! मुझे अब धनकी इच्छा नहीं है, आप अपने पुत्रसे मेरी भेंट करा दो। मैं उन्हें वनमें जानेसे

विचर रहे है इसलिये जानबूझकर ऐसे भयंकर स्थानमें रहना बुद्धिमानोंको उचित नहीं है। समय पाकर व्यर्थ खो देना उचित नहीं। सच्चे माता पिता व गुरुजन वे ही है, जो अपनी सन्तानको उच्च स्थानपर देखकर खुशी होते है और जो उन्हें फँसाकर कुगतिमें पहुँचाते हैं वे हितू नहीं, उन्हें शत्रु कहना चाहिये। इसलिये हे गुरुजनो! आप लोगोंका कर्तव्य है कि अब मुझे और अधिक इस विषयमें लाचार न करें और न मेरा यह अमूल्य समय व्यर्थ गमावें। जब विद्युतचरने ये बचन सुने और देखा कि अब समझाना व्यर्थ है, अर्थात् कुछ सार नहीं निकलेगा, तब अपना परिचय दे कहने लगा—

"स्वामी! मै आपसे बहुत झूठ बोला। मैं हस्तिनापुरके राजा दुरद्वन्दका पुत्र हूँ। बाल्यावस्थासे चोरी सीखा, सो पिताने देशसे निकाल दिया, तब बहुत देशोंमें जाकर चोरी की और वेश्याके यहां देता रहा। आज भी चोरीके निमित्त यहां आया था परन्तु यह कौतुक देखकर चोरी करना भूल गया और अब अतिशय विरक्त हुआ हूँ। बड़े पुरुष जिस मार्गसे चलें, उसी मार्गसे चलना श्रेष्ठ है। अब हे स्वामिन्! आपसे एक वचन मांगता हूँ सो दीजिये कि मुझ दीनको भी अपना चरणसेवक बना लीजिये अर्थात् साथ ले चलिये।"

तब स्वामीने यह स्वीकार किया और तुरंत ही उठकर खड़े होगये। यह देख सब लोग विलखत वदन हुए, परन्तु चित्राम सरीखे रह गये-कुछ मुँहसे शब्द नहीं निकलता था। सबके मनमें यही लग रही थी, कि कुँवर वरहीमें रहें और दीक्षा न लें। नगर भरमें क्षोभ होगया, सब लोग राजा प्रजा दौड़ आये।

यों तो संसारमें और बहुतसे लोग हैं, सो कौन किसे समझाने जाता है ? परंतु तुम हमारे घरके लड़के हो सो गुरु जनोंका कहना मानना ही उचित है। देखो, जो बहुत तृष्णा करता है वह अवश्य दुःख पाता है।

सुनो, एक कथा कहता हूं कि किसी जंगलमें एक ऊंट चरनेके लिये गया था सो कुएके निकटके एक वृक्षकी पत्ती तोड़ तोड़ कर खाने लगा। खाते खाते ज्यों ही पत्ती तोड़नेको ऊपरकी ओर मुंह किया कि अचानक झाड़परसे मधुके छत्तेमेंसे मधुकी बूंद आकर गिरी, सो मीठा मीठा स्वाद अच्छा लगा, तब और भी इच्छुक होकर ऊपरको देखने लगा और जब बहुत समय तक बूंद न आई, तो मुंह ऊपरको बढ़ाया, पर छत्ता ऊंचा होनेसे मुह वहां तक न पहुचा। तब ऊपरको उछाल मारी और उछलते ही कुएमें आ गिरा और वहींपर तड़फ तड़फ कर मर गया। इसलिये हे बाल!

तृष्णा परभवकी तजो, भोगो सुख भरपूर।
वर्तमान तज आगवत, देखें सो नर कूर॥
तन धन यौवन सुहृद जन, घर सुन्दरि वर नार।
ऐसा सुख फिर नहिं मिले, करें कोटि उपचार॥"

तब स्वामीने कहा— 'मामा! सुनो, एक कथा मैं कहता हूं कि एक सेठ परदेश जा रहा था। राहमें प्यास लगी, सो वह आतुर होकर एक वृक्षके नीचे जा बैठा। वहांपर उसे चोरोंने घेरा और उसका सब धन लूट लिया सो प्रथम तो प्यास और फिर धन लुट गया, उसे दुःख दूना हुआ। वह वहां उदास हो पड़रहा और किसी प्रकार निद्रा आ गई सो सो गया। उसने स्वप्नमें एक निर्मल जलका भरा

गंभीर समुद्र देखा, सो तुरंत पानी पीनेके लिये जीभ चलाने लगा। इतनेमें नींद खुली तो वहां कुछ भी न देखा तब विह्वल हो इधर उधर भटकने लगा, परन्तु पानी न मिलनेसे और भी दुःखी होगया। सो ऐ मामा! ये स्वप्नके समान इन्द्रिय भोग हैं, इनमें सुख कहां? इस प्रकार स्वामीने और भी अनेक प्रकार कथा कहकर संसारकी असारता वर्णन की।"

तब मामा कहने लगे—'हे नाथ! क्यों हम लोगोंको दुःखित करते हो? शांत चित्त होकर घर रहो। ऐसा कहकर अपनी पगड़ी उतारकर कुमारके सन्मुख रख दी और मस्तक झुकाकर नम्र हो कहने लगा,—तुमको तुह्मारी माताकी कसम है। अरे! मेरे आनेकी लाज तो रख लीजिये। माता पितादि गुरुजनोंके वचनानुसार चलना यही कुलीनोंका कर्तव्य है, परन्तु यहां तो यही दशा थी—

"ज्यों चिकने घट ऊपरे, नीर बूँद न रहाय।
त्यों स्वामीका अचल मन, कोई न सकत चलाय॥"

सो जब बहुत समय होगया और सवेरा हुआ, तब स्वामीने कहा—हे स्वजनवर्गों! पत्थरपर कमल, जलमें माखन और बालूमें जैसे तेल पानेकी इच्छा करना व्यर्थ है, उसी प्रकार अब वीतरागके रंगे हुए पुरुषको रागी बनाना असंभव है। ये तीन लोकोंकी वस्तुऐं मुझे तृणके समान तुच्छ दिख रही हैं और विषयभोग काले नाग समान भयकर मालूम होते हैं। ये रागरूप वचन विषैले तीरके समान लगते हैं। घर कारागारके सदृश है। स्त्री कठिन बेड़ी है। संसार बड़ा भारी भयानक वन है, उसमें स्वार्थी जीव सिंह व्याघ्रादिके सदृश

बिचर रहे हैं इसलिये जानबूझकर ऐसे भयंकर स्थानमें रहना बुद्धि-मानोंको उचित नहीं है। समय पाकर व्यर्थ प्राण देना उचित नहीं। सच्चे माता पिता व कुटुम्ब वे ही हैं, जो अपनी सन्तानको उच्च स्थानपर देखकर सुखी होते हैं और जो उन्हें फँसाकर कुगतिमें पहुंचाते हैं वे हितू नहीं, उन्हें शत्रु कहना चाहिये इसलिये हे कुल जनो! आप लोगोंका कर्तव्य है कि अब मुझे और अधिक इस विषयमें लाचार न करें और न मेरा यह अमूल्य समय व्यर्थ गमावें। जब विद्युच्चोरने ये वचन सुने और देखा कि अब समझाना व्यर्थ है, अब कुछ सार नहीं निकलेगा, तब सामने आ विनयसे कहने लगा—

"स्वामी! मैं आपसे बहुत कुछ बोला! मैं हस्तिनापुरके राजा सुसन्धरका पुत्र हूं। व्यसनवश मैं चोरी सीखा, सो पिताने देखके निकाल दिया तब बहुत देशोंमें जा जाकर चोरी की और वेश्याके यहां रहता रहा। आज भी चोरीके निमित्त यहां आया था परन्तु यह कौतुक देखकर चोरी करना भूल गया और अब अतिशय विरक्त हुआ हूं। जहां आप जिस मार्गसे चलें, उसी मार्गमें चलना श्रेष्ट है। अब हे स्वामिन्! आपसे एक वचन मांगता हूँ सो दीजिये कि हम सबको भी अपना चरण-सेवक बना लीजिये अर्थात् साथ ले चलिये।"

तब स्वामीने यह स्वीकार किया और तुरंत ही उठकर खड़े होगये। यह देख सब लोग विस्मित वदन हुए, परन्तु निरुपाय चकित रह गये-कुछ मुंहसे शब्द नहीं निकलता था। सबके मनमें यही लग रही थी, कि कुँवर यहीं रहें और दीक्षा न लें। नगर भरमें क्षोभ होगया, सब लोग राजा प्रजा दौड़ आये।

नरनारियोंकी अपार भीड़ हो गई, लोग नानातरहके विचारोंकी कल्पना करने लगे। कोई कहते-अहो धन्य है यह कुमार जो विषयसे मुंह मोड संसारसे नाता तोड़ जा रहा है। कोई कहते- भाई कुमारका शरीर तो केलेके झाड सरीखा कोमल है और यह जिनेश्वरी दीक्षा खड्गकी धार है, किस प्रकार सहन होगी? कोई माताकी दशा देख कहते थे-

" एक पूत जन्मो री माय।
घर सूनो कर तपको जाय॥ "

इत्यादि मनके अनुसार बोलते थे, परन्तु स्वामीका ध्यान तो वनमें मुनिके चरणकमलोंमें लग रहा था। सब लोग क्या करते और कहते हैं, इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं था। जब स्वामीके प्रयाण करनेका निश्चय ही हो गया तब राजाने रत्न-जड़ित पालकी मंगाई और स्वामीको स्नान कराकर केशर चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंसे विलेपन किया तथा पाटम्बरादि उत्तमोत्तम वस्त्र और सर्व आभूषण पहिराये। अहा! इस समय स्वामीके शरीरकी कांति कैसी अपूर्व थी कि सूर्य भी शरमा जाता था। राजाने स्वामीको पालकीपर चढ़ाकर एक ओर आप स्वयं लगे, दूसरी ओर सेठ लग गये।

इस प्रकारसे पालकी लेकर वनको चले। आगे आगे बाजे बजते हुए जा रहे थे। इसी समय माताने जाकर ये समाचार बहुओंसे कह दिये, सो वे सुनते ही मूर्छित हुईं। जब सखियोंने शीतोपचार कर मूर्छा दूर की, तब वे चारों अपनी सुध भूलकर गिरती पड़तीं दौड़ीं और स्वामीकी पालकीके चारों पाये चारोंने पकड़कर कहा-

" सुनो प्रभो ! गुण खान, कीनो बहुत मुलाहजो ।
अब हम तजें सुप्राण, जो आगेको चाल हो ॥"

यह सुनकर और उन स्त्रियोंकी यह दशा देखकर स्वामीने पालकी ठहरा दी और दयालु चित्त हो अमृत वचनोंसे समझाने लगे–"ए सुन्दरियो ! विचारो ! यह जगत् क्या है और किसके पिता पुत्र है ? किसकी माता और किसकी स्त्री ? यह तो सब अनादि कर्मकी संतति है। अनेक जन्मोंमें अनेकानेक सम्बन्ध हुए हैं, जिनका कुछ भी पारावार नहीं है। मैंने मोहवश इस संसारमें अनादिकालसे अनेकवार जन्म मरण किया परन्तु किसीमें बचानेकी सामर्थ्य नहीं हुई। अब यह अच्छा समय है कि जिसमें इन चार गतिकी बेड़ी छूट सकती है। अब विघ्न मत करो। मोहवश अपना और हमारा बिगाड़ मत करो। चलो तुम भी गुरुके पास चलकर इस पराधीन पर्यायसे छूटकर स्वाधीन सुख पानेका उपाय पूछो "।

यह सुनकर माता और चारों स्त्रियोंका चित्त फिर गया और पालकी छोड़ दी। वे सब चलते चलते जिस वनमें सुधर्मस्वामी तप कर रहे थे पहुंचे, और विनय सहित साष्टांग नमस्कार कर बैठे। मुनिनाथने 'धर्मवृद्धि' दी।

तब स्वामीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–" हे नाथ ! इस अगम अथाह अतट संसारसे पार उतारिये।

तब गुरु बोले—" हे कुमार ! अब तुम भेषको छोड़ दो।

यह सुन स्वामीने मुदित मन होकर तुरन्त ही वस्त्रादि आभूषण उतार दिये और अपने कोमल करोंसे केशोंको घासकी तरह उखाड़ डाले, और गुरुके सन्मुख नम्र भूत हो व्रतोंकी याचना को। परम दयालु, कर्म-शत्रुओंसे छुड़ानेवाले गुरुश्री कुमारको दीक्षा देकर मुनियोंके आचारका व्यौरा समझाने लगे, सो, सुनकर स्वामीकी माता जिनमती और चारों स्त्रियां भी भवभोगसे विरक्त हुई और पांचोंने गुरुके समीप आर्यिकाके व्रत लिये। विद्युतचरने भी उसी समय समस्त परिग्रहका त्याग कर मुनिव्रत लिया और नगरके नरनारियोंने शक्त्यनुसार मुनिव्रत तथा श्रावकव्रत लिये। फिर राजा तथा अन्यान्य गृहस्थ अपने २ स्थानको गये।

जम्बूस्वामी तपश्चरण करने लगे। जब उपवास पूर्ण हुआ तब गुरुकी आज्ञा लेकर नगरकी ओर भिक्षाके अर्थ पधारे। सो नगरके नरनारी देखनेको उठे। कोई कहते, अरी सखी! यह वही बालक है, जो राजाका पट्टबद्ध हाथी छूटा था सो पकड़ लाया था। कोई कहे, यह वही कुमार है, जो रत्नचूलको बांधकर मृगांकको छुड़ाकर उसकी पुत्री श्रेणिक राजाको परणवाई थी। कोई कहे, यह वही कुँवर है जिसने व्याहके दूसरे ही दिन देवांगना समान चारों स्त्री त्याग कर दी थीं। परन्तु स्वामी तो नीची दृष्टि किये जूड़ा प्रमाण भूमि शोधते हुए चले जारहे थे, सो जिनदास सेठने पड़गाह कर नवधा भक्ति सहित आहार दिया। तब स्वामीने 'अक्षयनिधि' कह दिया, सो देवोंने वहां पंचाश्चर्य किये।

इसप्रकार वे आहार लेकर वनमें गये और दिनोंदिन उग्र २ तपकरने लगे, सो शुक्लध्यानके प्रभावसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

अहा ! वह दिन (ज्येष्ठ सुदी ७) कैसा ही उत्तम था कि जंबूस्वामीको केवलज्ञान हुआ, और सुधर्मस्वामीको निर्वाणपद प्राप्त हुआ ! धन्य हैं वे जीव जिनको ऐसा अवसर देखनेको मिले !

फिर स्वामीने कईएक दिन विहारकर अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोध किया, और स्वर्ग नरकादि चारों गतियोंके दुःख-सुख तथा मुनि श्रावकके व्रत, तत्त्वका स्वरूप, हेय ज्ञेय उपादेय आदिका स्वरूप भले प्रकार समझाया और विहार करते २ मथुरा नगरी आये, सो वहांके उद्यानमें शेष अघाति कर्म नाश कर परमपदको प्राप्त हुए। अर्हद्दास सेठ सन्यास मरण कर छठवें स्वर्ग देव हुए। जिन- मती सेठानी भी स्त्री लिंग छेदकर उसी स्वर्गमें देव हुए। चारों पद्मनी आदि स्त्रियोंने भी तपके प्रभावसे स्त्री लिंग छेदकर उसी ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देव पर्याय पाई।

विद्युतचर नामके महातपस्वी मुनिराय विहार करते करते मथुराके वनमें आये, सो एक वनदेवी आकर बोली—"हे स्वामिन् ! इस वनमें एक दानव रहता है सो बड़ा दुष्ट स्वभावी है, और जो कोई यहां रहता है उसे रात्रिको आकर सपरिवार घेर दुःख देता है इसलिये हे स्वामिन् ! आप कृपाकर यहांसे अन्य क्षेत्रमें ध्यान धरें। तब स्वामी विद्युतचर कहने लगे कि जो डरसे कायर है, उन मुनियोंका सिंहवृत्ति गुण, (जिससे तप व्रतकी रक्षा होती है) नष्ट होजाता है और स्यारवृत्तिसे वे तपसे भ्रष्ट हो नीच गतिको पाते हैं। आज तो हमारे प्रतिज्ञा है सो हम यहीं ध्यान करेंगे, जो होनहार होगी सो होगी, ऐसा कह योग ध्यान धरा। जब आधी रात बीत गई, तब वह दानव आया और घोर उपसर्ग करने लगा। नाना प्रकारके रूप

घरघरकर डराने लगा। इस समय स्वामीने घोर उपसर्ग जानकर सन्यास धारण किया । निदान जब वह दानव थक गया और स्वामीको न चला सका, तब अपनी माया संकोचकर स्वामीके पास क्षमा मांगकर चला गया ।

जब सवेरा हुआ तो नगर नरनारी समाचार सुनकर देखनेको आये और मस्तक झुकाकर स्तुति की परंतु स्वामी तो मेरुके समान अचल ध्यानमें मौन सहित तिष्ठे रहें ।

इस प्रकार वे विद्युतचर महामुनिराय बारह वर्ष तक तपश्चरण कर अंतमें समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए। वहांसे चय मनुष्य जन्म ले शिवपुरको जावेंगे । और भी जिन मुनियोंने जैसा २ तप किया उसी प्रकार उत्तम गतिको प्राप्त हुए। सो इस प्रकार वे ब्राह्मणके पुत्र महामिथ्यात्वी जिन धर्मके प्रभावसे मोक्ष और सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुए। देखो, भवदेव! छोटा भाई बड़े भाईका मान रखनेके लिये और वे सेठकी चारों स्त्रियां जो पतिके बावले होजानेसे और पतिके द्वारा नाक कान आदि आंगोपांग छिदनेसे दु खित हो आर्यिका हो गई थीं सो भी इस जिन धर्मके प्रभावसे भवदेव तो सर्वार्थसिद्धि और वे चारों स्त्रियां छठवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर देव हुईं। और बड़े भाई भावदेव जंबूस्वामी होकर मोक्ष गये । देखो, जिन्होंने भय, लज्जा व मानवश भी धर्म अंगीकार किया था वे भी नरसुरके उत्तम सुख भोगकर सद्गतिको प्राप्त हुए, तो जो भव्यजीव सच्चे मनसे व्रत पालें और भावना भावे उन्हें क्यों न उत्तम गति प्राप्त हो ? अर्थात् अवश्य ही हो ।

इसलिये हे भव्य जीवो ! स्वपर पहिचान कर इस धर्मको धारो और स्वपर कल्याण करो। इस प्रकार यह पुण्योत्पादक कथा पूर्ण हुई। जो भव्य जीव मन वचन काय कर पढ़ें, सुनें व सुनावें, उनके अशुभ कर्मोंका क्षय हो ।

ॐ शांतिः! शांतिः!! शांति !!!

जम्बूस्वामी चरित जो, पढे सुने मन लाय ।
मन वांछित सुख भोगके, अनुक्रम शिवपुर जाय ॥
संस्कृतसे भाषा करी, धर्मबुद्धि जिनदास ।
लमेचू नाथूराम पुनि, छंदबद्ध की तास ॥
किसनदास सुत मूलचंद, करी प्रेरणा सार ।
जंबूस्वामी चरितकी, करी वचनिका सार ॥
तब तिनके आदेशसे, भाषा सरल विचार ।
लघुमति नाथूराम सुत, दीपचंद परवार ॥
जगत राग अरु द्वेष वश, चहुँ गति भ्रमे सदीव ।
पावे सम्यक् रत्न जो, काटे कर्म अतीव ॥
गत संवत् निर्वाणको, महावीर जिनराय ।
एकम श्रावण शुक्लको, करी पूर्ण हर्षाय ॥
अंतिम है इक प्रार्थना, सुनो सुधी नरनार ।
जो हित चाहो तो करो, स्वाध्याय परचार ॥

समाप्त